पू. ज्ञानसुंदरजी म.सा. द्वारा लिखित
"गयवरविलास रास" की संशोधित एवं संवर्धित आवृत्ति

बत्तीस आगमो से मूर्तिसिद्धि

आशीष तालेडा

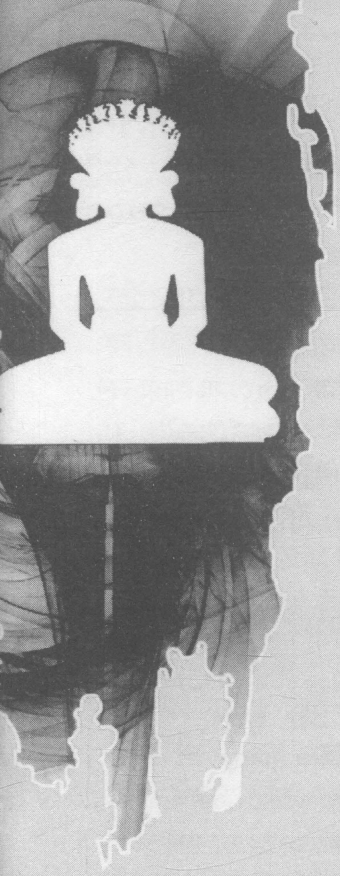

पू. ज्ञानसुंदरजी म.सा. द्वारा लिखित
"गयवरविलास रास" की संशोधित एवं संवर्धित आवृत्ति

बत्तीस आगमो से मूर्तिसिद्धि

: देवलोक से दिव्य सान्निध्य :
प. पू. गुरुदेव जम्बूविजयजी महाराज

: संशोधक - संपादक :
आशीष तालेडा

: प्रकाशक :
मिशन जैनत्व जागरण
'जंबूवृक्ष' C/503-504, श्री हरी अर्जुन सोसायटी, चाणक्यपुरी ओवर ब्रिज के नीचे,
प्रभात चौक के पास, घाटलोडीया, अहमदाबाद - 380061
M : 9601529534, 9408202125

© संपादक एवं प्रकाशक

प्रथम आवृत्ति, वीर सं. २५४५, विक्रम सं. २०७५, ई.स. २०१९

मूल्य : ५०

प्रत : १०००

प्राप्तिस्थान

जयपुर

आकाश जैन

ए/१३३, नित्यानंद नगर, क्वीन्स रोड,
जयपुर (राज.)

जोधपुर

विजयराजजी सिंघवी

जी हुजूर रेडीमेंट, त्रिपोलीया बजार,
जोधपुर-३४२००२ (राज.)

उदयपुर

अरुण कुमार बडाला

उदयपुर शहर, ४२७ बी, एमराल्ड टावर,
हाथीपोल, उदयपुर-३१३००१ (राज.)

करौली

डॉ. मनोज जैन

B-३, एच.पी. पेट्रोलपंप के पीछे,
नयी मंडी, हींडौन सीटी,
करौली-३२२२३० (राज.)

लुधियाणा

अभिषेक जैन : शान्ति निटवेर्स,
पुराना बाजार, लुधियाणा (पंजाब)

आग्रा

सचिन जैन

डी-१९, अलका कुंज, खावेरी फेझ-२,
कमलानगर, आग्रा (उ.प्र.)

दील्ही

मेघ प्रकाशन

C/o. मेघराजजी जैन,
B-५/२६३ यमुना विहार, दिल्ही-११००५३

नाशिक

आनंद नागशेठिया : ६४१, महाशोबा लेन,
रविवार पेठ, नाशिक (महा.)

मुंबई

जीतेन्द्र जैन : माइक्रोनीक्ष इन्फोटेक
८०, गणेश भवन, चौथा माला,
ओफीस नं. ५०, रामवाडी,
जागृती माताजी मार्ग, काल्बादेवी,
मुंबई-४००००२ (महा.)

के. जी. एफ.

आशीष तालेडा

प्रीन्स सूरजमुल्ल सर्कल, रोबर्ट सोनपेट
के.जी.एफ.-५६३१२२ (कर्णा.)

विजयवाडा

अक्षयकुमार जैन

डोर नं. ११-१६-१/१
सींग राजुवाली स्ट्रीट
वीजयवाडा-५२०००१ (आं.प्र.)

सीकन्द्राबाद

रुपेश वी. शाह

२-३-५४०, पहला माला, सुनीता सर्जन
अपार्टमेन्ट, पार्श्व पद्मावती मंदीर के सामने,
डी.वी. कोलोनी, सीकन्द्राबाद-५००००३

बेंग्लोर

अरवींदकुमार ओसवाल जैन

प्रेम मेन्शन, नं. १४, २१वां क्रोस, कीलरी रोड,
बी.वी.के. आइनगर रोड क्रोस
बेंग्लोर-५६००५३,

Design : VITARAAG GRAPHICS, Ahmedabad, (M) 8980007872

अहो आश्चर्यम्

जैन धर्म में हाल दो प्रकार के अमूर्तिपूजक पंथ है, एक जो मूर्ति और मूर्तिपूजा दोनो का विरोध करते है और दूसरा जो मूर्ति का नही पर मूर्तिपूजा का विरोध करते है।

मूर्तिविरोध का उनका मुख्य आधार श्री ठाणांग सूत्र के दसवे ठाण/स्थान में वर्णित मिथ्यात्व के दस भेद है, पर कहना पड़ेगा कि यह विरोध अनुचित हैं, आगमकार के आशय को समझे बिना शब्दो का एकांत हठाग्रह मात्र हैं । उसी ठाणांगसूत्र के उसी ठाण/स्थान में दस प्रकार के सत्य भी वर्णित हैं, उन दस भेद में से एक स्थापना सत्य हैं। भला आगमकार दो विरोधी बातें एक ही आगम में कह रहे है तो इसके पीछे का आशय क्या हैं यह सवाल सच्चे जिज्ञासू व्यक्ति के मन में उठे बिना नही रहेगा और दोनो बाते देखने के बावजूद मूर्ति का एकांत विरोध कोई माध्यस्थ व्यक्ति करेगा भी नहीं, फिर भी अपनी परंपरा के राग में आगमों की बाते ढकी जा रही हैं जो उचित नही हैं, इसीलिए अमूर्तिपूजक मान्य बत्तीस आगमों में से ही प्रमाण दिये गये हैं।

इसके साथ साथ मूर्तिपूजा का विरोध हिंसा के नाम पे होता है जो अत्यंत आश्चर्यजनक है। जहाँ स्थानकवासी पंथ अनुकंपादान में होती हिंसा को नजरअंदाज करके धर्म बताते है वहीं मूर्तिपूजा का हिंसा के नाम पे विरोध करते है। तेरा पंथी श्रावक उनके संतो के लिये टिफिन आदि में गोचरी ले जाते है और धर्म मानते हैं वहाँ उनको हिंसा नहीं दिखती और सारी की सारी हिंसा मूर्तिपूजा में ही दिखती हैं। एसी दोहरी नीति देख अत्यंत खेद होता है ।

स्थानक बँधवाने में होती हिंसा के बारे में कोई पूछे तो कहते हैं स्थानक बाँधना धर्म नहीं है, धर्म निमित्त कोई भी प्रकार की हिंसा नही हो सकती, स्थानक सामाजिक कार्य के लिए बाँधे जाते हैं। पर स्थानक में कभी कोई सामाजिक कार्य देखने में नही आया फिर चाहे भिखारियों को अन्नदान हो या रोगियों का उपचार, हाँ कई जगह शादि के छोटे-मोटे आरंभ जरुर देखा हैं और विशेषकर तेरापंथी भवन, शादिविवाह के कार्यक्रम के उपयोग में आते है। कैसी दयनीय स्थिति हैं, जो पवित्र स्थल श्रावक की धर्म आराधना के लिये बनाये जाते हैं वह इस तरह उपयोग में लिये जाते हैं। धर्म के नाम से हिंसा करके स्थानक/भवन नहीं बाँधना चाहते पर ऐसे अधर्म कार्यों के लिये बिना

हिचकिचाहट के जरुर बाँधेंगे और इन शादिब्याह में होते रात्रीभोजन, मैथुन सेवन की अनुमोदना, हजारों कीड़े, मकोड़े की हिंसा, असंख्यात स्थावर जीवों की हिंसा आदि का महापाप अकारण हीं उन उन संघ के श्रावकों को लगता हैं। धर्मस्थान की पवित्रता भी गयी और उलटा अनर्थदण्ड के, प्राणातिपात के पाप का बोज सर पे।

और भूल कर भी शादि ब्याह को सामाजिक कार्य न माने यह निजी कार्य हैं, सामाजिक नहीं, एक शादि में जाने पर एक के अनुमोदन का पाप लगता हैं पर शादि आदि निमित्त भवन बाँधने पर उस भवन में होने वाली सभी शादियों में होती हिंसा आदि का पाप लगता हैं। आर्य देश भारत की आर्य संस्कृति हंमेशा से मूर्तिपूजा को मानती रही हैं। इस बात का प्रमाण हमारी आँखों के सामने, हजारो वर्षों से खड़े गगनचुंभी तीर्थ, कोई अखंड तो कोई खंडित प्रतिमायें, प्राचीन ताम्र पत्र जिनमें अनेक तीर्थों का उल्लेख, अनेक शिलालेख आदि है। भारत में समय समय पर उत्पन्न हुये नये धर्म भी मूर्तिपूजा से विरुद्ध अपने अस्तित्व को स्थापित करने का प्रयास तो दूर विचार भी नही करते थे।

मूर्तिपूजा यह साकार उपासना पद्धती है पर हंमेशा से मूर्तिपूजक मत, चाहे जैन हो या जैनेत्तर, साकार और निराकार उपासना पद्धति दोनों को मानने के साथ साथ अपनाते भी हैं। आर्य धर्मों की मान्यता तब भी परिवर्तित नहीं हुई थी जब मुगलों के आक्रमण की शुरुआत हुई थी। तब भी हमारे पूर्वजो ने हर मुमकिन कोशिष की थी, आर्य संस्कृति की प्राचीन एवं कलात्मक धरोहरों के रक्षण की। आज भी कई जगह खनन करते हुये मूर्तियाँ मिल रही हैं, वह हमारे पूर्वजों का परम उपकार हैं हम पर।

मुगलों ने कोई कसर नहीं छोड़ी आर्य परंपरा का नाश करने के लिये। मंदिर ही नहीं ज्ञान भण्डारों का भी नाश करते रहे, कभी धर्म परिवर्तन न करनेवालों को मार देते तो कभी स्त्रियों का बलात्कार करते तो कभी बच्चों का अंग भंग कर देते, तीर्थयात्रा पर भारी कर लगाकर भी लोगो को मूर्तिपूजा से दूर रखने का प्रयास किया, कई लोगो ने धर्म परिवर्तन कर लिया तो कई ऐसे नये खड़े हो गये जो आर्य धर्मों को ही नया रुप देना चाहते थे। आर्य धर्म में नये-नये खडे हुए मुगल उपासना पद्धती से प्रेरित पंथो को मुगलों का पूरा समर्थन मिलता रहा। जैन हो या जैनेतर सभी में अमूर्तिपूजक पंथों का उद्‌भव काल लगभग एकसमान हैं। मुगलों की प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष सहायता के कारण ही

इनमें से आज भी कई पंथ अस्तित्व में है।

केवली प्ररुपित दया धर्म के मर्म से अंजान आज ऐसी कई मान्यतायें खड़ी हो गयी है जो सच्ची दया से दूर कर रही हैं। आज पर दया को ही संपूर्ण धर्म माननेवालों की होड मची है। परदया निश्चित ही धर्म का अंग है पर संपूर्ण धर्म बिल्कुल भी नहीं है। स्व आत्म दया, धर्म का आधार भी हैं और शिखर भी, आदि भी है और अंत भी, स्वआत्म दया को पोषित करती परदया ही सही मायने में धर्म रुप हैं।

दुषमकाल की यह विषम परिस्थिति है, विचित्रता हैं कि क्षण क्षण चित्रों (मूर्ति) का सहारा लेनेवाली आधुनिक पीढि भी मूर्ति विरोध के जहर से पीडित हैं। परमकृपालु परमात्मा महावीर के उपासक विशेषकर श्रावक श्राविका वर्ग के लिये "बत्तीस आगमों से मूर्तिसिद्धि" गयवर विलास रास पर आधारित लघु पुस्तिका, उपचार रुप काम करेगी ऐसी भावना के साथा जिनशासन से लिया जिनशासन को ही समर्पित।

प्रिय ! सच बात तो यह है कि कोई भी स्थानकवासी ३२, ४५ या ८४ आगम में यह बतलावें कि जिन प्रतिमा की वन्दना पूजना से अमुक साधु या श्रावक नारकी में गया। सो तो किसी सूत्र में है नहीं। न आज तक कोई ऐसा प्रमाण किसी स्थानकवासी ने दिया है।

साधु श्रावक ने जिन प्रतिमा वन्दी-पूजा है वो अब हम ३२ सूत्र में देखते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में भाषाशुद्धि एवं प्रुफ चेकिंग का ख्याल रखकर पुराने शब्दों को बदला गया है तथा कुछ जगह शब्द परिवर्तन एवं विशद व्याख्या भी की गई है... सुज्ञजन इस बात को ध्यान में रखकर ग्रंथावलोकन करें।

जिनाज्ञा विरुद्ध या लेखक के आशय विरुद्ध कुछ भी लिखा हो तो मिच्छामी दुक्कडम्।

वीर संवत २४४३ - **आशीष तालेडा**

पुष्प समर्पण

प्रस्तुत पुष्प सुविशुद्ध संयममूर्ति, सन्मार्ग प्ररुपक, तपागच्छाचार्य आ. भ. **श्रीमद् कैलाससागरसूरीश्वरजी महाराजा** एवं उनकी स्मृति में स्थापित संस्था, हमारी मातृ संस्था, समय-समय पर जिस संस्था से सहयोग मिलता रहा है... एसे **श्री कैलाससागरसूरि जैन ज्ञान मन्दिर (कोबा - महातीर्थ)** को सादर समर्पित

ली.

भूषण शाह

'मिशन जैनत्व जागरण'

तपागच्छाचार्य प. पू. आ. कैलाससागरसूरीश्वरजी महाराज का जीवनचरित्र

प्रास्ताविक

विगत कुछ वर्षों से मेरे सामने प्रश्न उपस्थित हो रहे है की "आपने उन्मार्ग के खंडन हेतु कई पुस्तक लीखी है... तो इसका जैनशासन को क्या फायदा है ?" इसका जवाब ही यह लेख है जो **तपागच्छाचार्य, सुविहित शिरोमणि आ. कैलाससागरजी म.सा.** के जीवन विषयक है... अतः इस लेख को पढकर सुज्ञजन समझ पाएँगे की उन्मार्ग के उन्मूलन से ही सन्मार्ग का संस्थापन शक्य है... आशा रखता हूँ कि आचार्य श्री का जीवन पढकर हम सब सन्मार्ग में स्थिर हो और सम्यक्दर्शन की आराधना द्वारा शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष को प्राप्त करें।

शेष शुभ... देवदर्शन में याद करें...

ली.

भूषण शाह

अहमदाबाद

तपागच्छाचार्य प. पू. आ. कैलाससागरसूरीश्वरजी महाराज का जीवनचरित्र

परम पूज्य तपागच्छाचार्य आचार्य श्रीमद् कैलाससागरसूरीश्वरजी महाराज साहब जिनशासन गगन के एक ऐसे नक्षत्र थे जिन्होंने अपनी दिव्य आभा से जैनजगत को प्रकाशित ही नहीं किया बल्कि अनेक भव्य आत्माओं के जीवन ज्योति को जलाकर उन्हें आत्मजागृति की राह पर चलने में प्रकाशपुञ्ज की भाँति मार्ग प्रशस्त किया। तपागच्छ के महाधिनायक जगत्गुरु परम पूज्य आचार्य श्री हीरविजयसूरिजी की पाट परम्परा में एक यशस्वी नाम है, तपागच्छनायक आचार्य श्रीमद् कैलाससागरसूरिजी महाराज। निःस्पृहता, निर्भीक अभिव्यक्ति, स्वाभाविक सहजता, कर्तव्य परायणता, नेतृत्व सक्षमता इत्यादि अनेकानेक सद्गुणों

से देदीप्यमान जीवन जनसामान्य के लिये प्रेरणास्पद और वरदान रहा है। पूज्य आचार्यश्री ने जिनशासन के उन्नयन हेतु अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया था, अपनी अनुपम प्रतिभा से जैनसंघ एवं जिनशासन से संबद्ध अनेकानेक जटिल समस्याओं का सरलतापूर्वक हल किया करते थे।

युगों-युगों तक जिनका व्यक्तित्व और कृतित्व संपूर्ण जैन समाज को परोपकार और कर्तव्यनिष्ठा की सतत् प्रेरणा देता रहेगा, ऐसे महापुरुष पूज्य गच्छनायक आचार्यश्री का जन्म पंजाब प्रान्त के लुधियाना जिले में जगरावाँ गाँव में विक्रम संवत् १९६०, मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष ६, दिनांक १९ दिसम्बर, १९१३ शुक्रवार के शुभ दिन पिता श्री रामकृष्ण दासजी के आँगन में माता श्रीमती रामरखी देवी की कुक्षि से हुआ था। इनके पिताजी लुधियाना जिला के प्रतिष्ठा सम्पन्न व्यक्ति थे और जगरावाँ गाँव में स्थानकवासी जैन समाज में प्रमुख की भूमिका निभाते थे। आपका नाम काशीराम रखा गया। कंहा जाता है कि काशीरामजी की कुंडली निकालने वाले एक ज्योतिषी ने उनके पिता से कहा था कि आपका पुत्र आगे चलकर सम्राट बने, ऐसे उच्च ग्रहयोग उसकी जन्म कुंडली में हैं। जो कहा था वही हुआ, इस पुण्यात्मा ने समय के साथ सावधानी पूर्वक कदम बढ़ाकर सम्राट ही नहीं तपागच्छनायक, महान जैनाचार्य, श्रीमद् कैलाससागरसूरीश्वरजी महाराज के बहुख्यात नाम से जीवन में आशातीत सार्थकता व अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की।

बालक काशीरामजी की परवरिश जैनधर्म के आदर्श एवं सुसंस्कारों के अनुरूप हुई। बाल्यकाल से ही अत्यन्त विनम्र और मृदुभाषी होने के कारण आप सबके प्रिय बन गए। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय पाठशाला में हुई। अपनी विशिष्ट प्रतिभा के बल पर आप अपने वर्ग में सदैव प्रथम श्रेणि से ही उत्तीर्ण होते रहे। उच्चशिक्षा के लिये आप तत्कालीन प्रख्यात लाहौर विश्वविद्यालय के सनातन धर्म कॉलेज में दाखिल हुए और उच्चतम अंकों के साथ बी.ए. ऑनर्स की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात् सनातन धर्म कॉलेज में ही प्रोफेसर बनने का प्रस्ताव आपके सामने आया,परन्तु उन्होंने यह कार्य अपने योग्य न समझकर उसे नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया।

आपके माता-पिता अत्यन्त धार्मिक एवं सुसंस्कारी प्रवृत्ति के थे इसलिए उनके गुणों का प्रभाव आप पर भी पड़ा। बाल्यकाल से ही माता-पिता ने उनमें सुसंस्कारों का सिंचन किया था, फलस्वरूप अपने माता-पिता, गुरुजनों एवं

बड़ों के प्रति आदर के प्रति अत्यन्त आदर का भाव रखते थे। विनम्रता एवं मृदुभाषिता जैसे गुण तो उन्हें विरासत में ही मिले थे। जब आप पाठशाला में थे, तभी उन्हें स्थानकवासी मुनि श्री छोटेलालजी महाराज साहब से परिचय हुआ था। मुनिश्री के सम्पर्क में आने के बाद आपके मन में अंकुरित आत्मसंशोधन की जिज्ञासा विकसित होने लगी और उनके पास दीक्षित होने के भाव मन में सुदृढ़ होने लगे। माता-पिता को जैसे ही इस बात के संकेत मिले उन्होंने काशीराम को सांसारिक बन्धनों में बाँधने का निर्णय कर लिया और रामपुरा फूल निवासी शांतादेवी नामक एक सुन्दर-सुशील कन्या के साथ इनका विवाह कर दिया। काशीरामजी प्रारम्भ से ही सांसारिक बन्धनों में बन्धने के इच्छुक नहीं थे, किन्तु माता-पिता के अत्यधिक आग्रह के कारण मात्र उनकी खुशी के लिये विवाह करना पड़ा।

काशीरामजी को धार्मिक पुस्तकें पढ़ने में बहुत रुचि थी। वे मुनि श्री छोटेलालजी के यहाँ बराबर जाया करते थे और उनके यहाँ से नियमित रूप से कोई धार्मिक पुस्तक अपने घर लाते और एक दिन में ही पूरी तरह पढ़कर उसे दूसरे दिन वापस कर देते और दूसरी पुस्तक ले जाते। एक दिन मुनिश्री ने सहज भाव से पूछ लिया काशीराम ! तुम मात्र पुस्तक ले जाकर पुनः ले आते हो या उसे पढ़ते भी हो ? काशीराम ने नम्रता पूर्वक कहा आप पुस्तक से कोई प्रश्न पूछ लीजिए, में पढ़ता हूँ या नहीं, वह स्वयं सिद्ध हो जाएगा। ऐसा जवाब सुनकर मुनिश्री को बहुत प्रसन्नता हुई। काशीराम की याद्दाश्त इतनी अपूर्व थी कि वे जिस पुस्तक को एक बार पढ़ लेते वह उन्हें पूरी तरह याद हो जाती।

काशीरामजी जन्म से स्थानकवासी मान्यता के होने के कारण मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे। कई बार वे मूर्तिपूजक समाज के लोगों के साथ चर्चा में भी उतर जाते और मूर्तिपूजा का घोर विरोध करते हुए मूर्ति को मात्र पत्थर कहकर लोगों को मूर्तिपूजा नहीं करने हेतु प्रेरित करते। प्रतिदिन की भाँति एक दिन काशीरामजी एक पुस्तक अपने घर ले आए। संयोगवश उस दिन मुनिश्री के ध्यान में यह नहीं रहा कि काशीराम कौनसी पुस्तक ले जा रहा है। वह पुस्तक मूर्तिपूजा के सन्दर्भ में थी। पुस्तक में जगह-जगह शास्त्रों व आगमों के अवतरण देकर मूर्तिपूजा शास्त्र सम्मत है, यह सिद्ध किया गया था। इतना ही नहीं, स्थानकवासी सम्प्रदाय की मान्यता वाले ग्रन्थों से भी कई उदाहरण देकर यह प्रमाणित किया गया था कि मूर्तिपूजा करनी चाहिए। मूर्तिपूजा को प्रमाणित

करती इस पुस्तक को काशीराम ने तीन दिन तक अपने पास रखी और सात बार पढ़ा। तीसरे दिन मुनिश्री ने काशीराम से पूछा-क्या इन दिनों तुम्हें पुस्तक पढ़ने का समय नहीं मिलता है ? किसी भी पुस्तक को एक दिन में पढ़कर लौटा देने वाला व्यक्ति जब तीन-तीन दिन तक एक पुस्तक को अपने पास रखेगा तो किसी को भी आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है।

उस पुस्तक को पढ़ने के बाद काशीरामजी को जब यह पता चला कि मूर्तिपूजा शास्त्रसम्मत है तो वे चौंक उठे, उन्हें आश्चर्य हुआ कि इन सभी बातों को जानते हुए भी मुनिश्री मूर्तिपूजा का विरोध क्यों करते हैं ? इस सम्बन्ध में उन्होंने मुनिश्री से पूछा तो मुनिश्री ने पहले तो कुछ तर्क देकर शान्त करने का प्रयास किया किन्तु काशीराम के प्रश्नों एवं तर्कों के सामने मुनिश्री निरुत्तर हो गये। आखिर उन्हें यह लगा कि पढ़े-लिखे युवक से वास्तविकता छिपाना सम्भव नहीं होगा, तब काशीरामजी से कहा-हाँ। मूर्तिपूजा शास्त्रसम्मत ही है। मुनिश्री की बात सुनते ही काशीराम को गहरा आघात लगा और फिर मुनिश्री से दूसरा प्रश्न किया- तो फिर आप मूर्तिपूजा का खंडन क्यों करते हैं ? सत्य को क्यों स्वीकार नहीं करते हैं ? तब मुनिश्री ने अपनी अवस्था एवं सम्प्रदाय का हवाला देते हुए अपनी असमर्थता दर्शाई। उन्होंने कहा कि मैं अब अपना अंतिम समय शान्तिपूर्वक जीना चाहता हूँ इसलिए अब इन विवादों में पड़ना नहीं चाहता। मुनिश्री की बात सुनकर काशीराम को अपनी अज्ञानता का आभास हुआ और बहुत देर तक इस सम्बन्ध में मुनिश्री से चर्चा करते रहे। अन्ततः मुनिश्री को इस बात के लिये राजी कर लिया कि अब से आप मूर्तिपूजा का विरोध नहीं करेंगे। मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में सत्य जानने के बाद काशीरामजी के मन में उस पुस्तक के लेखक से प्रत्यक्ष मिलकर अपनी जिज्ञासा शान्त करने की इच्छा जाग्रत हुई। मूर्तिपूजा सम्बन्धी उस पुस्तक के लेखक थे योगनिष्ठ आचार्य श्री बुद्धिसागरसूरीश्वरजी महाराज साहब, जिन्होंने जैन तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान, दर्शन आदि विभिन्न विषयों पर अनेक पुस्तकों का सृजन किया था।

योगनिष्ठ आचार्य श्री बुद्धिसागरसूरीश्वरजी महाराज से मिलने काशीराम गुजरात की यात्रा पर निकले, किन्तु यहाँ आने पर जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि बहुत पहले ही आचार्यश्री का स्वर्गवास हो चुका है, तो मन ही मन दुःखी हुए। फिर उन्होंने आचार्यश्री के शिष्य पूज्य आचार्य श्री कीर्तिसागरसूरीश्वरजी महाराज से मिलकर अपनी समस्त जिज्ञासाओं को शान्त किया। उनकी प्रेरणा से

काशीरामजी पालिताणा तीर्थ की यात्रा पर गए। सत्य जानने से पूर्व शत्रुंजयतीर्थ की घोर टीका करने वाले काशीरामजी शत्रुंजयतीर्थ में आदिनाथ भगवान का दर्शन कर पावन बने।

शत्रुंजय की यात्रा के पश्चात् पुनः तारंगातीर्थ पर पूज्य आचार्य श्री कीर्तिसागरसूरीश्वरजी महाराज साहब के दर्शन कर दीक्षा लेने की अपनी भावना उनके समक्ष रखी। पूज्य आचार्यश्री द्वारा माता-पिता और परिजनों की आज्ञा के बिना दीक्षा देने से मना करने पर काशीरामजी ने अन्त में कहा कि यदि आप दीक्षा नहीं देंगे तो मैं स्वतः ही साधु के वस्त्र धारण कर आपके चरणों में बैठकर साधना करूँगा। काशीरामजी की वैराग्य भावना देखकर आचार्यश्री ने अपने शिष्य जितेन्द्रसागरजी के पास दीक्षा लेने का सुझाव दिया। आचार्यश्री के निर्देशानुसार काशीरामजी ने पूज्य तपस्वी मुनि श्री जितेन्द्रसागरजी म. सा. के चरणों में अपना जीवन समर्पित कर दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के बाद काशीराम का नाम मुनि श्री आनन्दसागरजी रखा गया।

अपने परिजनों को सूचित किये बिना दीक्षा ग्रहण की थी, फलस्वरूप काशीराम के दीक्षित होने का समाचार सुनकर उनके परिजन गुजरात आये और काफी प्रयास करके उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें घर ले गये। घर पर भी काशीराम साधुजीवन ही जीने लगे तब अन्त में उनके परिजनों ने उन्हें दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति प्रदान कर दी। अन्ततः विक्रम संवत् १९९४ पौष कृष्णपक्ष १० के परम पावन दिन को अहमदाबाद की पवित्र भूमि पर पूज्य आचार्य श्री कीर्तिसागरसूरीश्वरजी म. सा. के पास पुनः दीक्षा ग्रहण की और मुनि श्री जितेन्द्रसागरजी म. सा. के शिष्य बने। दीक्षा के पश्चात् वे मुनि श्री कैलाससागरजी के नाम से विख्यात हुए।

साधु जीवन के प्रारंभिक काल से ही आत्मविकास और उज्ज्वल जीवन की प्रक्रिया को विस्तृत बनाने में लग गये। अपनी बौद्धिक प्रतिभा के कारण अल्प समय में ही आगमिक-दार्शनिक-साहित्यिक आदि ग्रन्थों का पूरी निष्ठा के साथ अध्ययन किया। अपूर्व लगन एवं तन्मयता के कारण कुछ ही वर्षों में मुनिश्री की गणना जैन समाज के विद्वान साधुओं में होने लगी। तलस्पर्शी अध्ययन के साथ-साथ मुनिश्री की गुरु सेवा भी अपूर्व थी। गुरु के प्रति समर्पण भाव के कारण गुरुदेव की असीम कृपा हर समय उनके साथ थी। मुनिश्री की योग्यता को देखते हुए विक्रम संवत् २००४ में गणिपद, २००५ में

पंन्यासपद, २०११ में उपाध्यायपद तथा संवत् २०२२ में साणंद में आचार्यपद से विभूषित किया गया।

ज्योतिष की भविष्यवाणी प्रतिदिन फलिभूत होती जा रही थी और आचार्यश्री की उन्नति भी निरन्तर गतिशील थी। विक्रम संवत २०२६ में समुदाय का समग्र भार आचार्यश्री पर आया और वे गच्छनायक बने। वि. सं. २०३९ ज्येष्ठ शुक्लपक्ष ११ के शुभदिन महुड़ी तीर्थ की पावन भूमि पर विशाल जनसमूह की उपस्थिति में विधिवत सागर समुदाय के गच्छाधिपति पद से विभूषित किया गया।

आप शिल्पशास्त्र के प्रकांड विद्वान थे, जिसके कारण जिनबिम्ब एवं जिनालय निर्माण के सम्बन्ध में श्रमण एवं श्रावकवर्ग सदैव उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करते रहते थे। उच्च कोटि के विद्वान और ऊँचे पद पर आसीन होते हुए भी आपमें कभी भी अभिमान की सामान्य झलक देखने को नहीं मिली। इसी निःस्पृहता एवं निरभिमानता के गुणों के कारण आप लोकप्रिय थे। महेसाणा की पावन भूमि पर महाविदेह के महाप्रभु श्री सीमन्धरस्वामी भगवान का विशाल जिनालय एवं विराट प्रतिमा की स्थापना भी पूज्य गच्छाधिपति की प्रेरणा से ही हुई थी। श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र कोबा के निर्माण में भी पूज्यश्री की प्रेरणा रही है।

जिनशासन की अपूर्व लोकप्रियता और ऊँची प्रतिष्ठा पाने पर भी आपने कभी अपने स्वार्थ के लिये उसका उपयोग नहीं किया। आपका जीवन अत्यन्त सादगीपूर्ण था। संयमजीवन ग्रहण करने के पश्चात् से ही आपने एकासणा तप का पालन प्रारम्भ कर दिया था जिसका लगभग चार दशक तक पालन किया। आप हमेशा मात्र दो द्रव्यों से ही आहार कर शरीर का निर्वहण करते थे। दीक्षा के थोड़े समय बाद ही आपने मिठाई का भी त्याग कर दिया था जिसका जीवन पर्यन्त निर्वाह किया। उग्रविहार और शासन की अनेक प्रवृत्तियों में व्यस्त रहते हुए भी आप अपने आत्मचिंतन, स्वाध्याय, ध्यान आदि के लिये समय निकाल लेते थे। आप आत्महित के लिये सदा जाग्रत रहते थे। आप सभी को आत्मश्रेय के लिये सदैव जाग्रत रहने का महामंत्र देते थे। आपमें परमात्मा के प्रति अपार श्रद्धा थी। आपके रोम-रोम में प्राणी मात्र के प्रति मैत्री की भावना भरी हुई थी। आप अपने समय का पूरा-पूरा सदुपयोग करते थे। कभी भी आपको व्यर्थ में समय व्यतीत करते हुए किसी ने नहीं देखा।

अपने संयम जीवन के ४७ वर्षों में आपने गुजरात, राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, बिहार, बंगाल आदि विभिन्न प्रान्तों में विचरण कर मानव के अन्धकारमय जीवन को आलोकित करने का अनुपम कार्य किया। आपके पावन उपदेशों एवं उज्जवल जीवन से प्रभावित होकर कई महान आत्माओं ने संयम ग्रहण किया। आपका विशाल शिष्य-प्रशिष्य परिवार आज जिनशासन के उन्नयन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहा है। शासन के महान प्रभावक के रूप में आप सदियों तक भुलाए नहीं जा सकेंगे। आपश्री के करकमलों से हुई शासनप्रभावना की सूची बहुत लम्बी है। अनेक अंजनशलाकाएँ, जिनमन्दिर प्रतिष्ठा, जिनमन्दिरों का जिर्णोद्धार, उपधान तप की आराधनाएँ आदि करवाकर आपने आजीवन जिनशासन की सेवा की है। किन्तु आपकी सच्ची पहचान आपका विरल व्यक्तित्व ही रहा है। आपके सान्निध्य में जो भी आया वह आपका ही होकर रह गया। आपका अंतरमन जितना निर्मल और करुणामय था उतना ही आपका बाहरी व्यवहार भी।

विक्रम संवत् २०४१ ज्येष्ठ शुक्लपक्ष २ के दिन प्रातःकाल का प्रतिक्रमण पूर्णकर प्रतिलेखन करने के लिये आपने कायोत्सर्ग किया। बस, वह कायोत्सर्ग पूर्ण हो उससे पहले ही आपकी जीवनयात्रा पूर्ण हो गई। सब देखते ही रह गये और आपने सबके बीच से अनन्त बिदाई ले ली। पूज्यश्री का अन्तिम संस्कार श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा में किया गया। उनके अग्निसंस्कार स्थल पर श्वेत संगमरमर के पत्थर से निर्मित गुरुमन्दिर का निर्माण कराया गया है। उनके अन्तिम संस्कार के समय प्रतिवर्ष श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा के महावीरालय में प्रतिष्ठित श्री महावीरस्वामी भगवान के ललाट को सूर्य किरणें आलोकित करती हैं। यह अलौकिक दृश्य देखने के लिये प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में श्रद्धालु जमा होते हैं।

कई सदियों के बाद ऐसे विरल विभूति, विराट व्यक्तित्व, समर्थ शासन उन्नायक का पृथ्वी पर अवतरण होता है जो स्वयं के आत्मकल्याण के साथ-साथ दूसरों को भी प्रेरित करता है। अपूर्व पुण्यनिधि, शासन प्रभावक, महान गच्छाधिपति पूज्य आचार्य श्री कैलाससागरसूरीश्वरजी म. सा. को उनके जन्मशताब्दी वर्ष में हम अपनी श्रद्धासुमन अर्पित करें एवं उनके चरणकमलों में भावपूर्ण कोटिशः वन्दना-नमन करें।

॥ श्री महावीराय नमः ॥

बत्तीस आगमो से

मूर्तिसिद्धि

आदि मंगल पांच अक्षर

दोहा

अरिहंत सिद्ध ने आयरिय, उवज्झाया अणगार।
पंच परमेष्ठि वांदीने, स्तवन रचुं शुभसार ॥ १ ॥

अर्थ-अरिहंत आदि पंच परमेष्ठि को नमस्कार करके स्तवन आरम्भ करता हूँ।

चार निक्षेपा जिन तणा, सूत्रों में वंदनीक।
भोला भेद जाणे नहीं, जिन आगम प्रत्यनीक ॥ १ ॥

अर्थ-सूत्र में भगवान का चार निक्षेपा-

नाम जिणा जिण नामा, ठवणजिणा पुण जिणदपडिमाओ।
दव्व जिणा जिण जीवा, भाव जिणा, समवसरणत्था ॥ १ ॥

श्री वीर प्रभु के चारों निक्षेपा वन्दनीक हैं।

(१) वीर प्रभु का नाम लेना सो नाम निक्षेपा। उसे वन्दनीक सब जैनी मानते हैं। इसके बारे में विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है।

(२) वीर प्रभु की प्रतिमा स्थापना निक्षेपा है। यह भी वंदनीक है। इसी को अमूर्तिपूजक पंथ (स्थानकवासी तेरापंथी) नहीं मानते। परन्तु अपने गुरु-गुरुणी की 'प्रतिमा' ''समाधि'' 'पगलिया' फोटू को मानते हैं। जैसे मारवाड़ में जैतारण के पास गिरिगाँव में स्थानकवासी साधू हरखचन्दजी की तथा रुण (जिला-नागौर) में हजारीमलजी म. की पाषाण की प्रतिमा है। लुधियाना में मोतीरामजी साधु की समाधि। अम्बाला में लालचन्दजी की समाधि और स्थानकवासी साधु-साध्वीयों के तथा तेरापंथी स्व. आचार्य श्री तुलसी व विद्यमान आचार्य महाप्रज्ञजी के संख्या बन्द फोटू मौजूद हैं। उनका तो भक्तिभाव, उत्साहपूर्वक आदर करते

हैं। जिनकी गति का भी निश्चय नहीं है। और श्री परमेश्वर जो की निश्चय ही मोक्ष में पधारे हैं। उनकी स्थापना (मूर्ति) की भक्ति पूजा-करने में हिचकते हैं। अहो आश्चर्यम् ! आश्चर्य ! ऐसा भी कह देते हैं कि "मूर्ति पत्थर है। अजीब है। इसकी भक्ति में क्या फायदा है ?" ऐसा कहना अनंत संसार वृद्धि का कारण है। क्योंकि श्री गणधर महाराज ने तो मूर्ति को जिनप्रतिमा फरमाई है। ठवणा सच्चा कहा है। उसे पत्थर कहनेवाले को उन्हीं के पूज्य जयमलजी ने "प्रतिमा ने प्रतिमा कंहे, भाटो कहे ते भ्रष्ट" कहा है।

सूत्र में "अरिहंताणं आसायणाए" अरिहन्तो की आशातना वर्जने का कहा है। थोड़ा विचार करें कि अरिहंतो की आशातना होती कैसे है। अरिहंत भावनिक्षेप से अभी सिर्फ सीमंधर आदि बीस विहरमान तीर्थंकर है और उनका भाव निक्षेप तो महाविदेह में विचर रहा हैं। फिर भी सूत्रों में अरिहंत की आशातना नही करने का कहा है सो नाम निक्षेप, द्रव्य निक्षेप और मुख्य रुप से स्थापना निक्षेप की अपेक्षा कहा है। मन में भी जब सीमंधर स्वामी की कल्पना करते हैं और अनादर करते हैं तो वो दरअसल स्थापना अरिहंत की ही आशातना है। आशातना करने से बोधि-बीज का नाश होता है। हम पूछते हैं कि तुम स्थानकवासी अरिहंत देव को छोड़कर माताजी, पितरजी, रामदेवजी, खेतपाल बावजी, सती माता आदि लौकिक देव की मानता करते हो, सैंकड़ों कोस जाते हो और वांदते पूजते हो। बतलाओ ! वे सब मूर्ति हैं या देव है ? यदि मूर्ति है तो वह पत्थर की है। आप वहाँ जाकर पत्थर के पास प्रार्थना करते हो या देव के पास ? यदि पत्थर के पास करते हो तो पत्थर तो तुम्हारे घर में भी बहुत हैं। यदि देव के पास करते हो तो घर बैठकर ही करना चाहिए। अब आपको बेधड़क कहना पड़ेगा कि "मूर्ति द्वारा देव से प्रार्थना करते हैं।"

भोले भाईयों ! लौकिक देव की मूर्ति द्वारा देव से प्रार्थना करके धन-पुत्र आदि प्राप्ति की लौकिक आशा को सफल करना चाहते हो, तो लोकोत्तर देव श्री तीर्थंकर की मूर्ति द्वारा प्रार्थना करके अपनी लोकोत्तर-स्वर्ग-मोक्षप्राप्ति की आशा को सफल करने में क्यों शरमाते हो ? और सुनो ! स्थापना निक्षेपा वंदनीक है। जब श्री तीर्थंकर भगवान समवसरण में पूर्व दिशा सम्मुख बिराजते हैं और शेष तीन दिशा में भगवान की मूर्ति स्थापन की जाती है। तब तीन दिशा में भगवान की वाणी श्रवण करनेवाले सभी उन मूर्ति को देखकर अपने मन में यही मानते हैं कि भगवान हमारे सम्मुख बिराजे हैं।

प्रिय ! यह बात सभी जैनी जानते हैं। कदाचित् आप कहो कि इसमें वंदन का अधिकार नहीं है। तो सुनो ! सूत्र उववाइ में इसका खुलासा है। देखिए ! **"अप्पेगइआ वंदणवत्तियाए अप्पेगइआ पूअणवत्तियाए"** इसी से सिद्ध हुआ कि स्थापना निक्षेपा (मूर्ति) वंदनीय है। और सुनो ! पांडव चरित्र में द्रोणाचार्य की मूर्ति के सामने अभ्यास करके एकलव्य भील ने अर्जुन के बराबर धनुर्विद्या हासिल की थी। प्रिय ! इस बात को स्वमत-परमत वाले सभी जानते है। इससे ज्यादा क्या प्रमाण चाहिए।

(३) वीर प्रभु का अतीत अनागत सो द्रव्य निक्षेपा। वह भी वंदनीय है। अब पहले यह समझना होगा कि द्रव्यनिक्षेपा कहते किसे है ? वर्तमान वस्तु का अतीत अनागत काल में जो रुपान्तर है, उसी को द्रव्य निक्षेपा कहते है। जैसे श्री वीर प्रभु के अतीत काल काल में तीर्थंकर पणे का निश्चय हो गया तब से छद्मस्थ १२ वें गुणठाणे तक द्रव्य तीर्थंकर। यह अनागत। तथा निर्वाण के पीछे भी द्रव्य तीर्थंकर। वह अतीत। यह सब जैन श्रावकों के लिये जैसे दीक्षार्थी का आदर दीक्षा लेने के पूर्व भी होता है। दीक्षार्थी का संयम लेने के निश्चय से लेकर दीक्षा तक वह द्रव्य निक्षेप से आदर पात्र है। वैसे वीर आदि तीर्थंकर के विषय में समझना।

(४) भाव निक्षेपा वीर प्रभु। के-३४ अतिशय, पैंतीस वाणी, आठ प्रातिहार ये सब वन्दनीय हैं।

(१) नाम निक्षेपा-सूत्र उववाइ में वन्दनीक कहा है। देखो ! "महाफलं खलु अरिहंताणं भगवंताणं नाम गोयस्स वि" सवणयाए यों नामनिक्षेपा वन्दनीक है।

(२) स्थापना निक्षेपा-वन्दनीय है। आचारांग, ठाणांग, समवायांग, भगवती, ज्ञातासूत्र, उपासकदशा, उववाई रायपसेणीय, जीवाभिगम, उत्तराध्ययन आदि बहुत सूत्रों में लेख है। इसी किताब में आगे अच्छी तरह से खुलासा करेंगे। प्रिय ! यह किताब ही स्थापना निक्षेपा (मूर्ति) को वन्दनीय-पूजनीय साबित करने हेतु लिखी गई है। सो आगे देख लेना।

(३) द्रव्य निक्षेपा-वन्दनीय है। १. नंदी सूत्र में देवड्डि गणि खमाश्रमण ने वीर प्रभु के २४ पाट पर हुवे आचार्यों को वन्दना की है। अब भी देवलोक में गये गुरुओं को सभी जैनी वांदते हैं। २. आवश्यक सूत्र में आदिनाथ भगवान के साधूओं ने चौवीसत्था (लोगस्स) में तेवीस तीर्थंकरो के द्रव्य निक्षेपा को

वन्दना करी है। लोगस्स में 'अरिहंते कित्तइस्सं चउवीसंपि केवली' इससे भी द्रव्य निक्षेपा वन्दनीक है। और सुनो ! आवश्यक सूत्र साधु प्रतिक्रमण का पाठ "उसभाइ महावीर पज्जव साणाणं" तथा 'नमुत्थुणं' वर्तमान काल में बोलते हैं। इससे भी द्रव्य निक्षेपा वन्दनीक साबित होता है। इत्यादि...

(४) भाव निक्षेपा-उववाई सूत्र आदि में वन्दनीय है। यों भगवान के चारों निक्षेपा आगम प्रमाण से वन्दनीय है। फिर भी जो भोले भाई कदाग्रह के वशीभूत होकर वीतराग के वचनों का उत्थापन करते हैं, उन्हें शास्त्रकार प्रत्यनीक कहते है। देखिये ! सूत्र ठाणांग ठाणा-३ **"सुयं पडुच्च तओ पडिणिता पण्णत्ता-सुयपडिणीते अत्थ पडिणीते तदुभय पडिणीए ॥ ६ ॥"**

इसका अर्थ-सूत्र आश्रयी तीन प्रकार के प्रत्यनीक कहे हैं। (१) सूत्र नहीं मानने वाला सूत्र का प्रत्यनीक (वैरी) है। (२) अर्थ को नहीं माने वह अर्थ का प्रत्यनीक (वैरी) है। (३) सूत्र-अर्थ दोनों को नहीं माने वह उभय यानि दोनों का प्रत्यनीक है।

प्रिय मित्रो ! आप आत्मकल्याण करना चाहते हैं तो सूत्र अर्थ की भली प्रकार से आराधना करें।

बत्तीस सूत्र के मांयने, प्रतिमा को अधिकार।
सावधान हुइ सांभलो, पामो समकित सार ॥ ३ ॥

अर्थ-बत्तीस सूत्रों में प्रतिमा का अधिकार यानि वर्णन है। उसे सावधान होकर सुनें। जिससे समकित की प्राप्ति होगी। समकित ही जगत में सार पदार्थ है।

समकित विण चारित्र नहीं, चारित्र विण नहीं मोक्ष।
कष्ट लोच किरिया करी, जन्म गमायो फोक ॥ ४ ॥

अर्थ-समकित के बिना चारित्र नहीं होता है। और चारित्र के बिना मोक्ष नहीं है। देखिए, उत्तराध्ययने अ. २८

नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं।
सम्मत्त चरित्ताइं जुगवं, पुव्वं च सम्मत्तं ॥२९॥

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विना न हुंति चरण गुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमुक्खस्स निव्वाणं ॥ ३० ॥

अर्थ सुगम है। भावार्थ ऊपर लिखा है। तथा जिसके समकित नहीं है, उसकी लोचादिक कष्टक्रिया कर्मबन्ध की ही हेतु है। देखिए ! - उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २० गाथा-४१

चिरंपि से मुंडरुई भवित्ता, अथिरव्वये तव नियमेहिं भट्ठे।
चिरंपि अप्पाणं किलेसइत्ता, न पारए हाइत्तु संपराए॥

अर्थ-सुगम है। **भावार्थ**-बहुत काल तक लोचादिक कष्ट करे और जो व्रत तप आदि में अस्थिर है, वह बहुत काल तक आत्मा को क्लेश पहुँचा कर भी संसार के पार न पहुँचे। दीर्घदृष्टि से विचार करो तो दंसणविवन्नगा का संसर्ग करना भी दुर्गति का कारण है। कहा भी है - उ. अ. २० गाथा-४४

विसं तु पीय जह कालकूडं, हणइ सत्थं जह कुग्गहियं।
एसो विधम्मो विसओवबन्नो, हणइ वेयाल इवावन्नो॥

अर्थ-सुगम है। **भावार्थ**-विष और शस्त्र के प्रयोग से तो एक भव में मरण होता है। परन्तु कुगुरु की संगति चतुर्गति संसार में भ्रमण कराती है। इसलिए उक्त संगत को छोड़कर शुद्ध समकितधारी का संसर्ग करो। जिससे अपना कल्याण हो।

(। ढाल १॥ आदर जीव क्षमागुण आदर॥ यह तर्ज)

प्रतिमा छत्रीसी सुनो भवि प्राणीं।
सूत्रों के अनुसारजी। टेक

आचारांग दूजे श्रुतस्कंधे, पन्दर में अध्ययन मुझारजी।
पांच भावना समकित केरी, नित बंदे अणगारजी॥ प्र०॥

अर्थ-श्री आचारांग श्रु० २ अध्ययन १५ में दो प्रकार की भावना (१) प्रशस्त (२) अप्रशस्त कही है/सो नीचे लिखता हूँ। चौदह पूर्वधारी धर्म धुरंधर आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी कृत निर्युक्ति के मूल पाठ में प्रथम अप्रशस्त भावना-

यदुक्तं पाणिवह मुसावए, अदत्त मेहुण परिग्गहे चेव।
कोहे माणे माया लोभे य, हवन्ति अप्पसत्था॥ ४५॥

भावार्थ-भावना दो प्रकार की है। प्रशस्त भावना और अप्रशस्त भावना। प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रहं तथा क्रोध, माना, माया, लोभ

ये अप्रशस्त भावना जाननी।

दूसरी प्रशस्त भावना पाठ

दंसण णाण चरित्ते तव-वेरग्गे य होइ उ सत्था।
जाय जहा ताय तहा, लक्खण वुच्छं सलक्खणओ ॥ ४५ ॥

तित्थगराण भगवओ, पवयण पावयणि अइसइड्ढीण।
अहिगमण णमण दरिसण, कित्तण संपूयणा थुणणा ॥ ३३३ ॥

जम्माभिसेय णिक्खमण, चरण णाणुप्पया य णिव्वाणे।
दिय लोअ भवण मन्दर, णंदीसर भोम णगरेसुं ॥ ३३४ ॥

अट्ठावय मुर्ज्जिते, गयग्ग पयए य धम्मचक्के य।
पास रहा वत्तणगं चमरुप्पायं च वदामि ॥ ३३५ ॥

गणियं णिमित्त जुत्ती, संदिट्ठी अवितहं इमं णाणं।
एय एगंत मुवगया, गुणपच्चइया इमे अत्था ॥ ३३६ ॥

गुण माहप्पं इसिणामकित्तणं, सुरणरिंद पूया य।
पोराण चेइयाणि य, इय एसा दंसणे होइ ॥ ३३७ ॥

भावार्थ-दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वैराग्यादिक में प्रशस्त भावना जाननी। तिन में प्रथम दर्शन भावना। दर्शन से (समकित) की शुद्धि होती है। उसका वर्णन शास्त्रकार करते हैं-

तीर्थंकर भगवन्त, प्रवचन, आचार्यादि युग प्रधान, अतिशय ऋद्धिमान, केवलज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चौदह पूर्वधारी तथा आमर्षोषधि आदि ऋद्धिवाले, इनके सन्मुख जाना, नमस्कार करना, दर्शन करना, गुणोत्कीर्त्तन करना, गन्धादिक से पूजन करना, स्तोत्रादिक से स्तवन करना इत्यादि दर्शन भावना जाननी। निरन्तर इस दर्शन भावना के भाने से दर्शन शुद्धि होती है। तथा तीर्थंकरों की जन्मभूमि में, निष्क्रमण-दीक्षा, ज्ञानोत्पत्ति और निर्वाण भूमि में तथा देवलोक विमानों के अन्दर-मेरुपर्वत के ऊपर, नन्दीश्वर आदि द्वीपों में तथा पाताल भवनों में जो शाश्वत चैत्य जिन प्रतिमा हैं उन्हें में वन्दना करता हूँ तथा इसी तरह शत्रुंजयगिरि, गिरनार, गजाग्रपद, दशार्णकूट-तक्षशिला नगरी में धर्म चक्र तथा अहिच्छत्रा नगरी जहाँ धरणेन्द्र ने पार्श्वनाथ स्वामी की महिमा की थी, रथावर्त्त पर्वत जहाँ श्री वज्रस्वामी ने पादपोपगमन अनशन किया था।

और श्री महावीर स्वामी की शरण लेकर चमरेन्द्र ने उत्पतन किया था। इत्यादि स्थानों में यथा संभव अभिगमन, वन्दन, पूजन, गुणोत्कीर्त्तनादि क्रिया करने से दर्शन शुद्धि होती है। तथा "गणित विषय में बीज गणितादि-गणितानुयोग का पारगामी है, अष्टांग निमित्त का पारगामी है, दृष्टिवादोक्त नानाविध युक्ति द्रव्यसंयोग का जानकार है, इनको समकित से देवता भी चलायमान नहीं कर सकते हैं, इनका ज्ञान यथार्थ है, ये जैसी आगाही करे वैसा ही होता है, इत्यादि प्रावचनिक यानि आचार्य आदि की प्रशंसा करने से दर्शन शुद्धि होती है। इसी तरह और भी आचार्यादिक के गुण माहात्म्य का वर्णन करने से, पूर्व महर्षिओं के नामोत्कीर्तन करने से, सुरेन्द्र-नरेन्द्र आदि द्वारा की गई उनकी पूजा का वर्णन करने से तथा निरन्तर चैत्यों की पूजा करने से इत्यादि पूर्वोक्त क्रिया करनेवालों के तथा पूर्वोक्त क्रिया की वासना से वासित अन्तःकरण वाले प्राणी के सम्यक्त्व की शुद्धि होती है। यह प्रशस्त (दर्शन समकित संबंधी) भावना जाननी।

इस लेख से स्पष्ट मालुम हो गया होगा। ज्यादा खुलासा आगे करेंगे। इस पर श्री शीलांकाचार्य यकृत टीका में विस्तार किया है। परन्तु पुस्तक बढ़ जाने के भय से वह यहां नहीं लिखा है। विद्वानों के लिए इतना ही प्रमाण काफी है। अगर किसी को देखना हो तो सूत्र देखकर समाधान कर लें।

सूयगडांग सूत्र श्रुतस्कन्ध २ अध्ययन ६ में भी;-

दूजे सुयगडांगे छट्ठे अध्ययने, आर्द्र नाम कुमारजी।
प्रतिमा देखी ज्ञान ऊपनो, पाम्यो भवनो पारजी॥ प्र०॥

अर्थ-आर्द्रकुमार को भी आदिनाथ प्रभु की शांत मुद्रावाली प्रतिमा देखकर जाति स्मरण ज्ञान हुआ था.

इस बारे में देखिए निम्नोक्त शीलांकाचार्य कृत टीका-

अन्यदाऽस्यार्द्रकपिता राजगृहे नगरे श्रेणिकस्य राज्ञः स्नेहाविष्करणार्थं परमप्राभृतोपेतं महत्तमं प्रेषयति, आर्द्रककुमारेणासौ पृष्टो यथाकस्यैतानि महार्हाण्यत्युग्राणि प्राभृतानि मत्पित्रा प्रेषितानि यास्यन्तीति, असावकथयद्यथा आर्यदेशे तव पितुः परममित्रं श्रेणिको महाराजः तस्यैतानीति, आर्द्रककुमारेणाप्यभाणिकिं तस्यास्ति कश्चिद्योग्यः पुत्रः ? अस्तीत्याह यद्येव, मत्प्रहितानि प्राभृतानि भवता तस्य समर्पणीयानीति भणित्वा महार्हाणि प्राभृतानि समर्प्याभिहितं-वक्तण्योऽसौमद्वचनाद्

यथाऽऽर्द्रककुमारस्त्वयि नितरां स्निहयतीति, स च महत्तमो गृहीतोभयप्राभृतो राजगृहमगात्, गत्वा च राजद्वारपालनिवेदितो राजकुलं प्रविष्टो, दृष्टश्च श्रेणिकः, प्रणामपूर्वकं निवेदितानि प्राभृतानि, कथितं च यथासंदिष्टं, तेनाप्यासनाशनताम्बूलादिना यथार्हप्रतिपत्त्या सन्मानित, द्वितीये चाह्नयार्द्रककुमारसत्का न प्राभृतान्यभयकुमारस्य समर्पितानि कथितानि च तत्प्रीत्युत्पादकानि तत्संदिष्ट वचनाति। अभयकुमारेणापि पारिणामिक्या बुद्धाय परिणामितंनूनमसौ भव्यः समासन्नमुक्तिगमनश्च तेन मया सार्द्ध प्रीतिमिच्छतीति, तदिदमत्र प्राप्तकालं यदादितीर्थंकर प्रतिमासंदर्शनने तस्यानुग्रहः। क्रियत इति मत्वा तथैव कृतं, महार्हाणि च प्रेषितानि प्राभृतानीति उक्तश्चासौ महत्तमो यथामत्प्रहितप्राभृतमेतदेकान्ते निरूपणीयं, तेनापि तथैव प्रतिपन्नं गतश्चासावार्द्रकपुरं, समर्पितं च प्राभृतं राज्ञः द्वितीये चाहन्यार्द्रककुमारस्येति, कथितं च यथासंदिष्टं, तेनाप्येकान्ते स्थित्वा निरूपिता प्रतिमा, तां च निरुपयत ईहापोहविमर्शनेन समुत्पन्नं जातिस्मरणं, चिन्तितं च तेन यथाममाभयकुमारेण महानुपकारोऽकारि, सद्धर्मप्रतिबोधत इति, त तोऽसावार्द्रकः संजातजातिस्मरणोऽचिन्तयत्यस्य मम देवलोकभोगैर्यथेप्सितं संपद्यमानैस्तृप्तिर्नाभूत् तस्यामीभिस्तुच्छैर्मानुषैः स्वल्पकालीनैः कामभोगैस्तृप्तिर्भविष्यतीति कुतस्त्यमिति, एतत्परिणाय्य निर्विण्णकामभोगो यथोचितं परिभोगमकुर्वन् राज्ञा संजातभयेन मा क्वचिद्यास्यति अतः पञ्चभिः शतै राजपुत्राणां रक्षयितुमारेभे, इत्यादि।

भावार्थ-एक दिन आर्द्रकुमार के पिता ने दूत के हाथ राजगृही नगरी में श्रेणिक राजा को प्राभृत (भेंट) भेजी। आर्द्रकुमार ने श्रेणिक राजा के पुत्र अभयकुमार के साथ स्नेह करने के वास्ते उसी दूत के हाथ भेंट भेजी। दूत ने राजगृह में जाकर श्रेणिक राजा को भेंट नजर की। राजा ने भी दूत का यथायोग्य सम्मान किया। और दूत ने आर्द्रकुमार के भेजे प्राभृत अभयकुमार को दीए तथा स्नेह पैदा करने के वचन कहे। तब अभयकुमार ने सोचा कि निश्चय ही यह आर्द्रकुमार भव्य है। निकट मोक्ष गामी हे। जो मेरे साथ प्रीति इच्छता है। फिर भी अभयकुमार ने बहुत प्राभृत सहित प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामी की प्रतिमा आर्द्रकुमार के लिए भेजी और दूत के द्वारा कहलाया की इस प्राभृत को एकान्त में देखें। दूत ने जाकर यथोक्त कथन करके प्राभृत दे दिया। प्रतिमा

को देखते देखते आर्द्रकुमार को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। धर्म में प्रतिबद्ध हुआ। अभयकुमार को याद करता हुआ वैराग्य से काम भोगों में आसक्त हुये बिना रहता है। पिता ने जाना कि कभी यह कहीं चला न जाये इस वास्ते पांच सौ सुभटों से पिता हंमेशा उसकी रक्षा करता है। इत्यादि।

हाँ, यह वर्णन निश्चित ही टीका में है पर टीकाकार कोई सामान्य व्यक्ति नहीं भद्रबाहु स्वामी हैं।

बन्धुओ ! इस समय में विद्यादेवी (ज्ञान) के प्रचार से विद्वानों की संख्या बढ़ी है। विद्वान लोग यह विचार अवश्य करेंगे कि चौदह पूर्व के धनी भद्रबाहु स्वामी जिन नहीं पर ज्ञान के विषय में जिन सरीखे हैं, उनके वचनों को नन्दिसूत्र में सूत्र सम कहा है। यह बात जैनियों को निःशंक मानना ही पड़ेगा। दूसरी बात यह है कि जब पास में दूसरा पक्ष खड़ा होता है तब पक्षपात भी खड़ा होता है। मूर्ति उत्थापक का जन्म वि. सं. न १५३१ में हुआ था।

प्रिय ! यह बात स्वमत परमत वाले सभी जानते हैं। श्री भद्रबाहु स्वामी वीर संवत् १७० में हुए। जिन को करीब १८३१ वर्ष का फासला हो गया। इतने वर्ष तक तो श्री भद्रबाहु स्वामी के वचन में शंका करनेवाला कोई नहीं हुआ। अब भी जो पढ़े लिखे विद्वान स्थानकवासी है, वे तो जैसे तीर्थंकर के वचन वैसे ही श्री भद्रबाहु स्वामी के वचनों को मानते है। लेकिन जो स्वघोषित पंड़ित मन में शंका करते हैं उन महोदयों से हम पूछते है कि आपको आचारांग सूत्र की सम्पूर्ण निर्युक्ति में शंका है या जहां मूर्ति का जिक्र है वहां शंका है ? तब तो कहना ही पड़ेगा कि सम्पूर्ण निर्युक्ति में शंका नहीं है। सिर्फ मूर्ति के अधिकार में शंका है। तब तो प्रगट मालूम होगा कि आपको मूर्ति से ही द्वेष है। जिससे सम्पूर्ण निर्युक्ति को माननी और मूर्ति का अधिकार आवे वहां शंका करना !

जब निर्युक्ति-टीका नहीं माननी तो बतलाओ समकित के बिना चारित्र हो सकता है या नही ? जो समकित के बिना चारित्र नहीं होवे तो समकित की भावना सिद्ध हो चुकी। आर्द्रकुमार कौन था ? किस नगरी में रहता था ? किस निमित्त से प्रतिबोध (ज्ञान) पाया ? यह सब मूलसूत्र से बतलाना चाहिए।

यदि टीका से बताओगे तो टीका में स्पष्ट शब्दों में प्रतिमा लिखा है, और संविग्न भवभीरु साधू सूत्र का एक शब्द भी यहाँ का वहाँ नहीं करते हैं।

आप जो अपनी किताबों में आर्द्रकुमार को धर्मोपकरण भेजा कहते हो तो उसका सूत्र पाठ दें। यदि मूल सूत्र ही मानने का आप का हठ है, तो पहले यह तो फरमाए कि मूलसूत्र के सिवाय आप कुछ मानते हैं या नहीं ?

सवाल – हम यहाँ पर आप से इतना ही पूछते है कि मूल सूत्र मानते हो तो "णमो अरिहंताणं" यह जैनियों का प्रथम सूत्र है। इसका अर्थ करें।

जवाब – अजी ! इसका अर्थ तो सीधा है।

सवाल – अच्छा ! मूल सूत्र से अर्थ फरमावें।

जवाब – णमो नमस्कार। अरि वैरी। हंताणं हनन करनेवालों की।

सवाल – अरिहंत कौन से वैरी का हनन करते हैं ?

जवाब – अजी ! अरिहन्त कर्म वैरी का हनन करते हैं।

सवाल – मूल सूत्र में तो कर्म शब्द की गन्ध भी नहीं है। फिर आप किस शब्द का अर्थ कर्म करते हैं ? आप तो मूल सूत्र ही मानते हैं।

जवाब – अजी साहब ! सम्बन्ध मिलाने के लिए उपयुक्त शब्द जोड़ना ही पड़ता है/नहीं तो सम्बन्ध ही टूटा जावे।

सवाल – मित्र ! तो फिर टीका मानने में क्यों हिचकते हो ? दीर्घदृष्टि से विचारो। टीका उसी का नाम है जो सम्बन्ध को मिलावे। देखो ! आचारांग सूत्र में पंच महाव्रत की भावनाएँ कही हैं। और समकित के बगैर महाव्रत होते नहीं हैं। इसलिए ही भद्रबाहु स्वामी ने सम्बन्ध पर समकित की भावना कही है तथा आर्द्रकुमार के पिछले भव का सम्बन्ध कहा है। उन भगवान का वचन सत्य मानोगे तभी आपका कल्याण होगा।

यदि आपको प्रतिमा से ही द्वेष है तो खुल्लं खुल्ला कह देना चाहिए कि 'सूत्र में तो लिखा है, लेकिन हम नहीं मानेंगे।' तो आप के लिये हमको इतना परिश्रम तो नहीं करना पड़ता। आपको मूल सूत्र तो मान्य है न ? तो देखिये ! मूल सूत्र भी निर्युक्ति टीका आदि मानने का ही कह रहे हैं।

सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्ति मिसिओ भणिओ।
तइओ निरवसेसो, एक विहि होइ अणुओगे॥

भावार्थ-प्रथम सूत्रार्थ देना। दूसरा निर्युक्ति सहित देना और तीसरा निर्विशेष (सम्पूर्ण) देना। यह विधि अनुयोग यानि अर्थ कथन की है। इस सूत्र पाठ में तीसरे प्रकार की व्याख्या में भाष्य चूर्णी और टीका का समावेश होता है।

इस मूल सूत्र में निर्युक्ति मानने का कथन है। यदि उसे नहीं माना तो आपने भगवतीजी को भी नहीं माना। कहो ! अब भी आप के दिल में कुछ भ्रम है ? देखो ! प्रतिमा के दर्शन से आर्द्रकुमार को ज्ञान उत्पन्न हुआ सो हम लिख आये हैं। हे प्रिय ! जैनी न तो हिंसा में धर्म मानते हैं, न जैनियों के आगम में हिंसा में धर्म कहा है, न जैनी हिंसा का उपदेश करते हैं और जब तक हम हिंसा अहिंसा के सच्चे स्वरुप को नहीं समझ लेते तब तक हम गलत धारणाएँ पालते रहेंगे।

अब हम हिंसा अहिंसा का खुलासा करते हैं। सो ध्यान देके सुनो-

अहिंसा और हिंसा की समालोचना			
जैनी		स्थानकवासी	
	जैनियों में धर्म उन्नति, शासन उन्नति, जाति उन्नति आगम या परम्परा अनुसार प्रवृत्ति में जो हिंसा होती है, उसे जैनी स्वरुप हिंसा मानते हैं।		स्थानकवासीयों की मान्यता अनुसार धर्म उन्नति, शास्त्र उन्नति या जाति उन्नति की प्रवृत्ति में जो हिंसा होती है उससे स्थानकवासी बोधि बीज का नाश या मंदबुद्धि या नरक गामी मानते है।
१	साधु ग्राम-नगर विहार धर्म शासन उन्नति के लिये करे उसमें हिंसा होती है।	१	साधु ग्राम-नगर विहार शासन उन्नति के लिये करे उसमें हिंसा होती है।

२	साधु को रस्ते जाते नदी आवे तो आज्ञा मुजब उतरते हैं, इसमें हिंसा होती है। पूर्ववत्	२	साधु को रास्ते जाते नदी आवे तो उतरते हैं, इसमें हिंसा होती है।
३	साधु को गोचरी जाना, पडिलेहण करना, गुरु को वन्दन करना, जिन आज्ञा है। इसमें भी हिंसा है। पूर्ववत्	३	साधु को गोचरी जाना, पडिलेहण करना, गुरु को वन्दना करना, इसमें भी हिंसा है।
४	साधु को बरसात में ठल्ले-मात्रा जाना इसमें भी आज्ञा है, हिंसा अवश्य होती है। पूर्ववत्	४	साधु को बरसात में ठल्ले जाना इस में भी हिंसा अवश्य होती है।
५	श्रावक कान्फ्रैंन्स में हजारों लोग इकट्ठे होते हैं, शासन उन्नति करते हैं। पूर्ववत् (हिंसा)	५	श्रावक कान्फ्रैंन्स में हजारों लोग इकट्ठे होते हैं। शासन उन्नति करते हैं। (हिंसा)
६	शास्त्र लिखने में, छपाने में शासन उन्नति है। पूर्ववत् (हिंसा)	६	शास्त्र लिखने, छपाने में भी शासन उन्नति है। (हिंसा)
७	कॉलेज पाठशालादि में धर्म शिक्षा देनी शासन उन्नति। पूर्ववत् (हिंसा)	७	कॉलेज पाठशालादि में धर्म शिक्षा देनी शासन उन्नति। (हिंसा)
८	बोर्डिंग १ हुन्नरशाला २ गुरुकुल ३ बालाश्रम ४ आदि पूर्ववत् (हिंसा)	८	बोर्डिंग १ हुन्नरशाला २ गुरुकुल आदि (हिंसा)

९	मन्दिर बनाते है।	९	स्थानक, पौषधशाला बनाते है। (हिंसा)
१०	भगवान की मूर्ति कराते हैं व साधुओं का फोटू उतारते है।	१०	अपने गुरु की मूर्ति समाधि पगलिया, साधुओं का फोटू कराते हैं।
११	तीर्थयात्रा शत्रुंजय, गिरनार, शिखरजी, केशरीयाजी आदि जाते है।	११	कितनेक तीर्थयात्रा करते हैं, कितनेक नहीं करते हैं। वे भैरु, भवानी, रामदेवजी आदि को ध्याते हैं।
१२	जिन प्रतिमा की भक्ति करते हैं।	१२	गुरु गुरुणी की समाधि, पगलिया आदि की भक्ति करते हैं।
१३	दूर देश में साधु के वंदन को जाते हैं।	१३	दूर देश में साधु को वन्दने को जाते हैं।
१४	गुरु को लेने को सामने जाते हैं। नगर प्रवेश भी अति उत्साह से कराते हैं। साधु को पहुँचाने भी जाते है।	१४	गुरु को लेने को सामने जाते हैं, नगर प्रवेश अति उत्साह से कराते हैं। वे साधु को पहुँचाने जाते हैं।
१५	पर्युषण में तपस्या और देव गुरु की अधिक भक्ति करते हैं।	१५	पर्युषण में तपस्या व साधर्मिक की भक्ति करते हैं और भट्ठी भी अधिक जलाते हैं।
१६	दीक्षा महोत्सव करते हैं।	१६	दीक्षा महोत्सव करते हैं।
१७	साधु का मृत महोत्सव करते हैं।	१७	साधु का मृत महोत्सव करते है।
१८	स्वामीवात्सल्य करते हैं।	१८	गौतम प्रसादी के नाम से प्रसाद खाते हैं।
१९	साधु अपना लेख छापे में छपाते हैं।	१९	साधु अपना लेख छापे में छपाते हैं।

शासन की उन्नति की समालोचना			
जैनी		स्थानकवासी	
१	रजस्वला धर्म (M.C.) पालते हैं।	१	रजस्वला नहीं पालते हैं, कितने ही तो कहते है कि 'फोडा फूठा है' इसमें क्या ?
२	शास्त्रजी की आशातन टालते हैं और बहुत भक्ति करते है।	२	शास्त्रजी को सिराने दे देते हैं और भक्ति पूजा नहि करते हैं। अशुचि हाथ भी लगा देते हैं।
३	साधु रात्री पानी रखते हैं।	३	रात्री को पानी नहीं रखते हैं और दावा करते हैं।
४	कपड़ा आदि पानी से धोते हैं।	४	कपड़ा आदि नोपाणी (पिशाब) से भी धोते हैं।
५	सूतक मृतक के घर का आहार पानी नहीं लेते हैं।	५	सूतक मृतक के घर का आहार पानी ले लेते हैं।
६	क्षत्रीय, वैश्य, ब्राह्मण को शिष्य बनाते हैं, इनका आहार लेते हैं।	६	इनके सिवाय नाई, जाट, कुम्हार, मेणा, तेली आदि को भी देते है। इनके घर का आहार भी खाते हैं।
७	हलवाईयों के कढ़ाईयों का धोवण नहीं लेते हैं।	७	बाजार में हलवाईयों की कढ़ाईयों का बाजे कुत्तादिक व झूठा पानी भी ले लेते हैं। यहाँ तक कि घरों से पोछे का पानी भी लेते हैं।
८	साधु गृहस्थी के घर में धर्मलाभ देके प्रवेश करते हैं।	८	साधू चोर की तरह चुपचाप गृहस्थ के घर में जाते हैं। वहाँ पर ढ़की उघाड़ी बहु बेटियों को देखते हैं। इसमें कितनी शासन की हीलना होती है !

दया-हिंसा की समालोचना			
जैनी		स्थानकवासी	
१	द्विदल का आहार नहीं लेते हैं।	१	कितनेक तो द्विदल को समझते ही नहीं, जो समझते हैं वो लोलुपिपणा से या कायस्वृत्ति से छोड़ नहीं सकते। उसमें असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं तो भी वो खाते हैं।
२	अभक्ष-अनंतकाय का गृहस्थी को पच्चक्खाण कराते हैं और आप भी नहीं खाते हैं।	२	अभक्ष-अनंतकाय नहीं खाने का गृहस्थीओं को उपदेश करते हैं और आप खाते हैं।
३	बासी आहार जो रस चलित जिसमें तार बनता है ऐसा नहीं लेते हैं।	३	बासी आहार लेते हैं। और ललिया (तार) जीव नहीं वरजते हैं।
४	गृहस्थी का झूठा आहार नहीं लेते हैं।	४	गृहस्थी का झूठा आहार लेते हैं।
५	बर्तनों का झूठा पानी जिस में द्विदल आदि हो वो नहीं लेते हैं।	५	बर्तनों का झूठा पानी ले लेते हैं, और दावा करते हैं।
६	गरम पानी पीते हैं। और निर्वद्य धोवण भी।	६	कच्चे पानी के घड़े में राख, आटा, दूद, ओले, कोलडूनाँ खेके पी लेते हैं तो कितनेक गरम पानी भी पीते हैं।
७	मुहपत्ति हाथ में रखते हैं, बोलते समय यतना के लिये मुँह आगे रखते हैं।	७	मुँहपत्ति से रात दिन मुहबन्धा रखते हैं और उनके श्लेष्म नाक के मेल आदि से असंख्य सम्मूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं।
मुँह बंधन संवत् १७०८ में लवजी ढुंढ़क साधु ने नया पन्थ चलाया है।			

प्रिय ! ये तो नमूना लिखा है। ऐसे तो अनेक बोल हैं। जितनी शासन की निंदा हो रही है सब इन्हीं लोगों की ऊपर, लिखी प्रवृत्ति के ही कारण है। अब स्वयं विचार कर लेवें कि हिंसा धर्मी कौन है ? क्या आपने समवायांग सूत्र नहीं सुना ? अपना अपराध दूसरे पर डालने से महान मोहनीय कर्म बंधता है। आज आपके गुरु लुंकाजी जगत में नहीं है, तब ही आप हिंसा की गठर चला रहे हो। लुंकाजी ने मोहनी कर्म के उदय से जिन प्रतिमा उत्थापी थी परन्तु तुम्हारे सरीखी हिंसा की प्रवृत्ति नहीं चलाई थी, जो कि तुम्हारे सरीखी हिंसा की प्रवृत्ति रखता तो कृतघ्नी पंथ कभी नहीं चलता।

प्रश्न - क्यों महात्माजी ! लुंकाजी और अभी के स्थानकवासीयों की प्रवृत्ति एक है या भिन्न-भिन्न हैं ?

उत्तर - पाठको ! इनकी प्रवृत्ति में जमीन आसमान का फर्क है।

प्रश्न - कृपया फर्क हमें भी सुनाइये।

उत्तर - लो सुनो ! परन्तु चमकना मत। नमूना सुनाता हुं।

लुंकाजी की प्रवृत्ति व अभी के स्थानकवासीयों की प्रवृत्ति			
लुंकाजी		आज के स्थानकवासी	
१	व्याकरण को व्याधिकरण मानते थे।	१	व्याकरण, न्याय, कोश व अलंकार आदि पढते हैं।
२	३२ सूत्र के सिवाय कुछ नहीं मानते थे और नहीं वांचते थे।	२	टीका, भाष्य, चूर्णि, निर्युक्ति आदि वांचते हैं।
३	रास चौवीसीयों को सावद्य कह के नहीं वांचते थे।	३	रास चौवीसीयाँ मोटे पूज्य भी वांचते हैं।
४	अन्य मत के पंडितों से नहीं पढते थे।	४	अब अन्य मत के पंडितों से पढते हैं।
५	मुहपत्ति हाथ में रखते थे।	५	दिन रात मुख बाँधते हैं। यह प्रवृत्ति लवजी से चली है।

६	द्विदल आहार नहीं खाते थे।	६	द्विदल खाते हैं और दावा करते हैं।
७	गोचरी की झोली साधु हाथ की कलाई पर लाते थे। आहार गृहस्थी को नहीं दिखाते थे।	७	अभी हाथ में लाते हैं, घर घर में आहार दिखाते हैं। कोई जगह पात्रे का आहार देखके बालक रोने लग जाते हैं।
८	तीर्थयात्रा को नहीं जाते थे।	८	संख्याबंध लुंकागच्छ के साधु, यति, श्रीपूज्य श्रावक आदि जाते हैं।
९	स्थानक-धर्मशाला भी नहीं कराते थे।	९	विशेष गामों में स्थानक-धर्मशाला होते हैं।
१०	साधु चद्दर की छाती पर गाँठ नहीं लगाते थे।	१०	अब खूब कसके गाँठ लगाते हैं और चोलपट्टा फकीर टका तमलकी तरह पहनते हैं।
११	संख्याबंध श्रावक दूर देशों में साधु को वंदन करने जाना और चातुर्मास पर्युषणा में भट्टियाँ चलानी इत्यादि बातें नहीं थीं, इत्यादि अनेक बोल हैं, पुस्तक बढ जाने के भय से नहीं लिखा हैं।	११	संख्याबंध श्रावक दूर देश में साधु को वंदन करने जाते हैं। चौमासा-पर्युषण में भट्टियाँ चलाते हैं। कोई गाँव में तो बिचारे साधारण गृहस्थ पर हजारों लोगों को खिलाने का दण्ड पड़ जाता है।

अब भी आपकी कलई खुलने में कुछ कसर रही हैं ? इससे ज्यादा देखना हो तो अन्य पुस्तकों में देख लेना। ढूंढक चरितावली या कुमति कुठार में देखो। ये आप के हित के लिये ही मैंने अपना अमोल समय इस कार्य में लगाया है। स्थानकवासी समाज पर मेरा किंचित मात्र भी द्वेष भाव नहीं हैं। बल्कि मेरे पर जितना स्थानकवासियों का उपकार हैं वह हंमेशा मानता हूँ, प्रति उपकार के लिये ही यह परिश्रम उठाया है।

॥ इति प्रथम द्वितीय गाथार्थ ॥

ठांणायंगे चौथे ठाणे, सत्य निक्षेपा च्यारजी।
दसमे ठाणे ठवणा सच्चे, इम भाख्यो गणधारजी॥

अर्थ-ठाणांग ४ उ. २ पाठ चउव्विहे सच्चे पण्णते तं जहा-नाम सच्चे, ठवणा सच्चे, दव्व सच्चे, भाव सच्चे। **टीका**-सत्य सूत्र नामस्थापनासत्ये सुज्ञाते, नाम सत्य मनुपयुक्तस्य सत्यमपि, भावसत्यंतु।

स्थानकवासियों का माना हुआ टब्बा अर्थ-चार प्रकारें सत्य साचूं कहयो ते कहेवै-नाम सत्य ते रिषभादि। १. स्थापना सत्य भगवतनी प्रतिमा २. द्रव्य सत्य जे जीव जिन थासे ३. भाव सत्य ते प्रत्यक्ष बैठा जिन।

ठाणांग सूत्र ठाणा १० में दस प्रकार के सत्य १ ठवणां सच्चे अजिनोपि जिनोऽयमणाचार्योंप्याचार्योयमिति, स्थानकवासियों का माना हुआ टब्बा अर्थ (ठवणा) जिन के विरहे जिनपडिमा आचार्य के विरहे स्थापना आचार्य ते सत्य। इम गणधर भगवान भाख्यो।

साधु लकड़ी के घोड़े को घोड़ा कहते हैं तो सत्यभाषा है। तो फिर वीतराग देव की प्रतिमा को वीतराग कहने में क्यों शरमाते हैं और मूर्ति को पत्थर जड़ कर के संसार वृद्धि क्यों करते हो ?

प्रिय पाठकों ! भगवान के नाम, स्थापना, द्रव्य, तीन निक्षेपा को तो शून्य कहते हैं और चोथा भाव निक्षेपा इस काल में है नहीं। तब तो भगवान का शासन ही विच्छेद हो गया।

अंजन गिरि ने दधिमुखा, नंदीश्वर द्वीप मोझारजी।
बावन मंदिर प्रतिमा जिनकी, वंदे सुर अणगारजी॥ प्र. ४॥

अर्थ-ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे उ. २ में बहुत विस्तार है। सम्पूर्ण लिखे तो ग्रन्थ बढ जावे, इसीसे जितना प्रयोजन है, सो पाठः-

चत्तारि अजणग पव्वया पण्णता चत्तारि जिण पडिमाउ सव्वय्यणामयाउ संपलिअंकणिसणाउ थूभाभिमुहोउ चिट्ठंति तं जहा-रिसभा वद्धमाणा चंदाणणा वारिसेणा पण्णता चत्तारि सिद्धायअणा चत्तारि दहिमुहगपव्वया पण्णत्ता

इत्यादि मूल सूत्र का पाठ है। ज्यादा खुलासा देखना हो तो सूत्र जीवाभिगम से नंदीश्वर द्वीप के अधिकार में अंजनगिरि ४ पुष्करणी बावी १६ दधिमुखा ६ रतिकरा ४ राज्यधानी १६ सिद्धायतन २० जिन प्रतिमा २१६० मुख-मंडप २०

पिछाधर मंडप २० स्थुभ स्थुयपासे जिन पडिमा ३२० चैत्यवृक्ष ८० इन्द्रश्वण ८० पुष्करणी ८० वनखंड ३२० मणुगलिया ४८००० गांमाणसिया ४८००० इतना अधिकार मूल पाठ में हैं, और ३२ कनकगिरि सिद्धायतन जिन पडिमा सहित वृत्ति में है। प्रिय ! यह बात जैनी अच्छी तरह से जानते हैं। ५२ चैत्यालय नंदीश्वर द्वीप में हैं। उनकी देवता अट्ठाई चौमासी संवत्सरी या जिन कल्याणक में यात्रा करते हैं। इसका लेख जीवाभिगम जंबूद्वीप पन्नत्ति आदि सूत्रों में प्रसिद्ध है। शायद आपको अणगार वांदवा में शंका हो तो सुन लीजिए, भगवती सूत्र श. २० उ. ९ चारण मुनि का पाठ-

यत्- बीइएणं उप्पाएणं णंदिसरे दीवे समोसरणं करेइ।
तहिं चेइआइं वंदइ वंदइत्ता.....

विस्तार ७वीं गाथा के अर्थ में देखो।

थापनाचारज चोथे अंगे, द्वादश ठाणामाँयजी।
सत्तरमे समवायंगे जंघाचारण, प्रतिमा वंदन जायजी। प्र. ५।

अर्थ-समवायांग सूत्र का बारमां समवाय का पाठ-

यत्- दुवालसावते कित्तिक्कम्मे प. तं. दुओणयं जहाज यं
कित्तिकम्मं बारसावत्तं चोउ सिरे तिगुत्ते दुपवेसं एगनिक्खमणा

अर्थ-स्थानकवासियों का माना हुआ टब्बा अर्थ-बारे आवर्त मांहे ते कृतिकर्म-वांदणा कहा। भगवंत श्री वर्द्धमान स्वामी ए ते कहै छै बे अवनत बेवेला मस्तक नमाडवो, गुरुनी थापना कीजै। तेह थकी अउठ हाथ बेगला रही पडिक्कमीए, अउठ हाथमांहि अवग्रह कहिये। उभथिका इच्छामि खमासमणो कहिए बिहुं वांदणे बिहुं वेला मस्तक नमाडिये। पछे अवग्रहमाँहि आवीये। यथा-जातमुद्रा जन्म अवसरे बालक नी परे बर्लटाभरिहाथ जोड़ि रही कृतकर्म वांदणा १२ आवर्त छ छ वेला गुरु ने पगे वांदणा कीजे। अहो कायं काय ए पाठ कहि बिहुवेला थइ १२ आवर्तन थया। चोसरां ४ वेला गुरुनै पगे मस्तक नमाडीये। त्रणँगुती मन वचन कायानी गुप्त कीजै उपदेश बेवेला वांदणाने अर्थे अवग्रहमांहि आवेने एक निखमण अवग्रहबहिरि पहले वांदणे एकवेला निकली बीजी वेला गुरु पगे बेठा ज वणीस माफिक एह पाठ कहा एह समवायंग वृत्तिनो भाव। इसमें स्थापना आचार्य खुलासे कहा है।

जंघाचारण विद्याचारण मुनि जिनप्रतिमा वांदणे को जाते हैं। सूत्र समवायांग ठा. १७ मूल पाठ। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम रमणिज्जाउ भूमिभागाउ सातिरेगाइ सत्तरस जायण सहस्साइ उड्ढं उप्पेइत्ता ततो पच्छा चारणाण तिरियगती पावतिनी।

अर्थ - टीका में बहुत विस्तार है।

अर्थ - स्थानकवासियों का माना हुआ टब्बा।

अर्थ - इणी ए रत्नप्रभा पृथ्वी विषे घणी रमणीक समोभूमि भाग छ तेह थकी झाझेरी बे कोस अधिक सत्तरे जोजन सहस्र लगे उचे उत्पतति उडीने ए तले लवण समुद्रनी शिखालगे ऊँचा उप्पतति तिवारे पछे जंघाचारण विद्याचारणनीतिरछीगति पर्वत तले तिरछी द्विपे रुचिक द्वीपे एक नंदीश्वरद्वीपे जिन प्रतिमा वादिवां जाई।

बंधव ! किसी गुरुगम से सूत्र सुणो जो स्थापनाचार्य न हो तो गुरु आदेश किसका लेवे ? वन्दना किसको देवे ? (अहो कायं काय संफासं) किस को कहे ?

(पूर्व पक्ष) हम थापना नहीं माने, साक्षात् गुरु की वंदना करै।

(उत्तर पक्ष) तुम्हारे गुरुजी वंदना किस को करै ?

(पूर्व पक्ष) हमारे गुरुजी ईशान खूण में वंदना करते हैं।

(उत्तर पक्ष) खूणा तो अजीव हैं।

(पूर्व पक्ष) नहीं जी ईशान खूणे से सीमन्धरस्वामी को वन्दना कर प्रतिक्रमणादि की आज्ञा मांग लेते है।

(उत्तर पक्ष) भरतक्षेत्र में शासन किसका है ?

(पूर्व पक्ष) महावीर स्वामी का है।

(उत्तर पक्ष) फिर आज्ञा सीमन्धर स्वामी की कैसे लेते हैं ? अव्वल तो यह बतावें-आप के माने हुऐ ३२ सूत्र में सीमन्धर स्वामी का नाम किस सूत्र में है ? दूसरा महाविदेह के साधु का कल्प ही अलग है। प्रतिक्रमण का भी नियम नहीं। पाप लागे तो करे। तीसरा वे भगवान् करोड़ो कोस पर बिराजते हैं, उनकी काया का स्पर्श कैसे करते हैं ?

(पूर्व पक्ष) भगवान तो दूर बिराजे हैं, परन्तु हम ईशान खूणे में भगवान का आरोप कर वंदना कर लेते हैं।

(उत्तर पक्ष) लो ! आखिर तो रस्ते पर आना ही पड़ा। जब परोक्ष में आरोप (थापना) मानते हो, जिससे तो प्रत्यक्ष में हीं मानना ठीक है। जिससे

भगवान की आज्ञा और आप का नियम दोनों भी रह जावे, अस्तु।

पाठको ! ठाणांग ठांणा १० तथा समवायांग दोनों सूत्र में स्थापनाचार्य का लेख था। सो हमने बता दिया हैं, और आवश्यक सूत्र में प्रतिक्रमण विधि में भी स्थापनाचार्य कहा है। ४ ज्ञान १४ पूर्वधारी श्री भद्रबाहु स्वामी ने स्थापना कुलक में स्थापनाचार्य की विधि का प्रतिपादन अच्छी तरह से किया है। वो कुलक भी मौजूद है। अस्तु।

शतक तीजो उद्देसो पहेलो, भगवती में सारजी।
चमर इन्द्र सरणा लइ जावे, अरिहंत बिंब अणगारजी ॥ प्रतिमा. ॥ ६ ॥

अर्थ-भगवती सूत्र शतक ३ उ. १ चमर इंद्र के अधिकार में तीन शरणा पाठ-

यत्- णणत्थ अरहंते वा अरहंत चेइयाणि वा अणगारे वा।
भावियप्पाणो णीसाए उड्ढं उप्पयइ जाव सोहम्मे कप्पे ॥

भावार्थ-शक्रेन्द्र विचार करता हुआ "चमरइंद्र भी अपनी शक्ति से सुधर्म कल्प देवलोक में नहीं आ सकता, इतना अवश्य हैं कि अरिहंत, अरिहंतों की प्रतिमा-२ अणगार भावित आत्मा की, नेश्राय (सरणों) से ऊर्ध्व लोक में आ सकता है।"

ए तीनों शरणों में से कोई एक शरणा लेके चमरइंद्र ऊर्ध्वलोक में जा सकता है। परन्तु ये नहीं समझना की एक शरणा लेके जावे तो बाकी २ शरणा निष्फल है।

तीन शरणो में से चमरइन्द्र अरिहंत वीर प्रभु का शरणा लेकर गया है और जिन प्रतिमा तथा अणगार का शरणा लेके भी जा सकते हैं।

जैसा अरिहंतो का प्रभाव और आसातना है तैसे ही जिन प्रतिमा का प्रभाव और आशातना है। इसीसे ही ३ सरणा, आशातना २ ही कही है। पाठ:श. ३३१

यत्- महा दुक्ख खलु तहारूवाणं अरहंताणं।
भगवंताणं अणगाराणं य अच्चासायणयाए ॥

अर्थ सुगम है। इसी का मतलब जो अरिहंतों की आशातना है। भैरु आदि की मूर्ति को पूठ देने में भेरु की आशातना होती है कारण ? उस मूर्ति में भेरु का आरोप है। वैसा ही भगवती स. १० उ. ५ देवता डाढा की आशातना

टाले, ऐसा पाठ है और डाढा की भक्ति करते हैं। आशातना पाप है। भक्ति धर्म है और देखो दशवैकालिक अ. ९ उ. २ गाथा।

संघट्टइत्ता काएणं, तहा उवहिणामवि।
खमेह अवराहं मे, वइज्जा न पुणोत्तिए॥

भावार्थ-गुरु की उपधि आदि की पग आदि लगने से आशातना हो जावे तो गुरु को ही खमावे। उपधि अजीव होते हुये भी गुरु महाराज की उपधि होने से गुरु महाराज की जितनी आशातना होती है उतनी ही गुरु की उपधि पर पैर आदि लगाने से होती है। इसी तरह जिन प्रतिमा के प्रति भी समझ लेना। ४ शरणों में मूर्ति किस शरणा में है ? ऐसा विकल्प मन में आये तो बंधव ! अरिहंतो की मूर्ति अरिहंतों के शरणों में है और सिद्धों की मूर्ति सिद्धों के शरणों में हैं। इसी का समाधान भी ऊपर कर आये हैं (प्रश्न) फिर तीन शरणों मे जुदा जुदा क्यों कहा (उत्तर) किसी काल क्षेत्र से यदि तीर्थंकरों का योग न हो तो प्रतिमा या साधु के शरणे से जा सकता है परन्तु तुम (अरिहंत चेईयाणि) का अर्थ छद्मस्थ अरिहंत करते हो, ए ४ शरणों में से किस शरण में है ? जो अरिहंतो के शरण में कहोगे तो पहले पाठ में तो अरिहंत का शरण आ गया है। कदाचित् साधु के शरण में कहोगे तो तीसरा अणगार का शरणा कह दिया है। छद्मस्थ अरिहंत पांच पदो में कौन से पद में हैं ? जो अरिहंतों के पद में कहोगे तो अरिहंतों का पहिला शरणा है। जो साधु पद में कहोगे साधु का तो तीसरा शरणा कहा है।

शाश्वती अशाश्वती प्रतिमा वंदे, दुग चारण मुनिरायजी।
शतक वीसमें उद्देशे नवमे, बहु वचन कहयो जिनरायजी॥ प्रतिमा. ॥ ७ ॥

अर्थ-भगवती सूत्र शतक २ उ. ९ के पाठ में चारणमुनिओं ने जिन प्रतिमा वांदी है। सो मूल पाठ है।

यत्-जंघाचारणस्स णं भंते। तिरियं केवतिए गतिविसए प. ? गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं रुयगवरे दीवे समोसरणं करेति करइत्ता तहिं चेइयाइं वंदइ तहिं चे २ तओ पडिनियत्तमाणे बितिएणं उप्पाएणं नंदीसर वर-दीवे समोसरणं करेति नदी २ तहिं चेइयाइं वंदइ तहिं चेइयाइ वं. इहमागच्छइ २ इह चेइयाइं वंदइ, जंघा-चारणस्स णं गोयमा ! तिरियं एवतिए गइविसए प। जंघाचारणस्स णं भंते ! उड्ढं केवतिए गतिविसए

पन्नत्ते ? गोयमा ! से णं इओ एगेणं उप्पाएणं पंडगवणे समोसरणं करेति समो. २ तहिं चेइयाइं वंदति तहिं चे. २ ततो पडिनियत्तमाण बितिएणं उप्पाएणं नंदणवने समोसरणं करेति नंदणवने २ तहिं चेइयाइ वंदति तहिं २ इह आगच्छइ २ इह चेइयाइं वंदति, जंघाचारणस्स णं गोयमा ! उड्ढं एवतिए गतिविसए प.।

अर्थ-हे भगवन् ! जंघाचारण मुनि का तिरछी गति का विषय कितना है ? गौतम ! एक कदम में रुचकवर जो तेरहवा द्वीप है उसमें समोसरण करे, वहाँ के चैत्य अर्थात् शाश्वत जिनमंदिर (सिद्धायतन) में शाश्वती जिन प्रतिमा को वंदन करते हैं। वहां से पीछे निवर्तता हुआ दूसरे कदम में नंदीश्वर द्वीप में समवसरण करते हैं, करके वहाँ वो सभी चैत्यों को वंदन करते है। फिर यहाँ के अर्थात् भरत क्षेत्र में आकर के चैत्य अर्थात् अशाश्वती जिन प्रतिमा को वंदन करते है। जंघाचारण की तिरछी गति का विषय इतना है। तो हे भगवन् ! जंघाचारण मुनि का ऊर्ध्व गति का विषय कितना है ? गौतम ! एक कदम में पांडुक वन में समवसरण करे, करके वहां चैत्यों को वंदन करते है, वहाँ से पीछे लौटते हुये दूसरे कदम में नंदन वन में समवसरण करते हैं। करके वहाँ के चैत्य को वंदन करते हैं, फिर यहाँ आकर के चैत्यों को वंदन करते हैं। गौतम ! जंघाचारण की ऊर्ध्व गति का विषय इतना है। इसी मुताबिक विद्याचारण है, परन्तु उत्पात में फर्क है। प्रतिमा वांदने का अधिकार सदृश है।

पाठको ! इस विषय में आगे बहुत चर्चा हो चुकी है। जिस से लूंकागच्छी अनेक महानुभावों ने प्रतिमा वंदणीय हैं यह स्वीकार कर लिया है। जैसे संवत् १६१० के लगभग अहमदाबाद में लूंका गच्छी पूज्य मेघजी ऋषिने आचार्य पद छोड़ के पचीस साधुओं के साथ में जैन दीक्षा ली है। ऐसा तो संख्याबंध आज तक चला ही आता है।

चारण मुनि को आलोचना लेने का कहा है सो देख कोइ कहे कि...

पाठको ! ध्यान देके सुनो, सामान्य साधु को भी किसी वस्तु को देखने के निमित्त जाने का भगवान ने निशीथ सूत्र में मना किया है, देखने जावे तो प्रायश्चित कहा है। तो चारणमुनि द्वीप देखने को जाव और भगवान उसका वर्णन करें, यह बात असंभव है।

दूसरा-आलोचना तो रस्ते आने जाने के लिए है, जैसे मुनि गोचरी से आ के आलोचना करते हैं परन्तु यह नहीं समझना कि गोचरी गया उसकी

आलोचना है। प्रिय ! आलोवणा तो रस्ते में जाते आते अविधि की हो सकती है। तीसरा-चैत्य शब्द का अर्थ ज्ञान करते हैं तो ३२ सूत्र में किसी जगह (चैत्य) को ज्ञान कहा है तो बतलाना। नंदी, भगवती, पन्नवणा, अणुयोगद्वार आदि बहुत सूत्रों से पाठ-नाणं पंचविहा पण्णत्ताः तथा अनेक साधु सामायिक आदि ११ अंग १४ पूर्व पढ़े हैं। परन्तु ५-११-१४ चैत्य नहीं किया और ज्ञान तो एक वचन है और चैइय बहु वचन है। प्रिय ! ज्ञान तो अरुपी है तो क्या उक्त द्वीप में ज्ञान का ढिगला पड़ा है ? ज्ञान को वंदन करने के लिए वहाँ द्वीप में जाने की क्या जरुरत थी ? आगे मुनि अपने स्थान नगर में आके अशाश्वती प्रतिमा को वंदन करते हैं। वो क्या अर्थ करोगे ? प्रिय ! भाव ज्ञान तो अरुपी है और स्थापना ज्ञान कहोगे तो प्रतिमा कहने में क्यों शरमाते हो। हमारे कई स्थानकवासी भाई भी (चैत्य) का अर्थ मन्दिर प्रतिमा करते हैं।

(१) प्रश्न व्याकरण आश्रवद्वार १ (चैत्य) अर्थ प्रतिमा उक्त सूत्र अ. ५ उक्त सूत्र अ. १०।

(२) उववाई पूर्णभद्र (चैत्य अर्थ) मन्दिर प्रतिमा।

(३) व्यवहार सूत्र चूलका (चैत्य) अर्थ प्रतिमा।

(४) ज्ञाता, भगवती आदि में पदों के अधिकार (चैत्य) अर्थ प्रतिमा।

यह अत्यंत दुःखद बात है कि जहां जहां जिनेश्वर संबंधी चैत्य का वर्णन आता हैं सिर्फ वहाँ चैत्य के अनेक अर्थ हो जाते हैं और बाकी देवपक्ष संबंधी चैत्य का अर्थ सिर्फ मंदिर मूर्ति ही होता हैं और जहाँ जहाँ सूत्रों में खुल्ले स्वर में जिन प्रतिमा कहा है वहाँ जिन का अर्थ बदल देते हैं। अहो ! परमोपकारी जिनेश्वर प्रभु के रुप को दर्शानेवाली प्रतिमा से कैसा द्वेष ?

चैत्य का अर्थ सूत्र में खुलासा प्रतिमा किया है ठा. ३ उ. १

जीव शुभ दीर्घ आयु तीन कारण से बांधते हैं। पाठ-'देवीयं चेइय' उववाई में भगवान को वंदने के अधिकार में पाठः'देवयं चेइयं' भगवती आदि में ऐसा पाठ बहुत है। इसका अर्थ देवता के चैत्य (प्रतिमा) जैसे आप की सेवा भक्ति करुं (टीका देवतं दैवचैत्यं इष्टदेव प्रतिमा) आगे वंदे हैं। इस में सम्पूर्ण चैत्य वंदन आ जाता है, उववाइ में एक वचन है ठाणांग सूत्र (एगे आया) देखो आचारांगसूत्र में तीर्थ यात्रा कही है। गौतम स्वामी ने अष्टापद की यात्रा की है। तो फिर शंका ही किस बात की ? इससे सिद्ध हुवा कि चारणमुनि ने शाश्वती प्रतिमा वंदी है इति॥

सती द्रोपदी प्रतिमा पूजी। ज्ञाता सूत्र मंझार जी।
आणंद श्रावक अङ्ग सातमें। सुण तेहनो अधिकारजी॥ प्र.८॥

अर्थ-सूत्र ज्ञाताजी अध्ययन. १६ प.ठ.

यत्-तएणं सा दोवइ रायवर कन्ना जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ। मज्जणघरमणुप्पविसइ ण्हाया कयबलि कम्मा कयकोउय मङ्गलपायच्छित्ता सुद्धपावेसाइं वत्थाइं परिहियाइं मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ जेणेव जिनघरे तेणेव उवागच्छइ २ जिनघरमणुपविसइ पविसइत्ता आलोए जिणपडिमाणं पणामं करेइ लोमहत्थयं परामुसइ। एवं जहा सुरियाभो जिणपडिमाओ अच्चेइ तहेव भाणियव्वं जाव धुवं डहइ। धुवं डहइत्ता वाम जाणुं अंचेइ अंचेइत्ता दाहिणजाणुं धरणीतलसि निहट्टु त्तिरक्खुत्तो मुद्धाणं धरणी तलसि निवेसेइ निवेसइत्ता इसिं पच्चुण्णमइ करयल जावति कट्टु एवं वयासी नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव सम्पत्ताणं वन्दइ नमंसइ जिनघराओ पडिणिक्खमइ।

अर्थ-तब द्रोपदी राजवर कन्या जहाँ स्नान मज्जन करने का घर (मकान) वहाँ आवे। मज्जन घर में प्रवेश करे। स्नान करके किया है बलिकर्म पूजाकार्य अर्थात् घर देहरे में पूजा करके कौतुक तिलकादि मंगल, दधि, दूर्वा, अक्षतादि से ही प्रायश्चित दुःस्वप्नादिके घातक किये हैं। जिसने शुद्ध उज्ज्वल सुन्दर जिनमंदिर में जाने योग्य ऐसे वस्त्र पहर के मज्जन घर में से निकले। जहाँ जिनघर है वहाँ आवे। जिनघर में प्रवेश करके देखते ही जिन प्रतिमा को प्रणाम करे। पीछे मोरपीछी लेकर जैसे सूर्याभ देवता ने जिन प्रतिमा को सत्रह प्रकार से पूजा वैसे सर्वविधि जानना। सौ सूर्याभका अधिकार यावत् धूप देने तक कहना पीछे धूप देके वामजानु (डाबागोड़ा) ऊँचा रखे जिमणा जानु (सज्जा गोड़ा) धरती पर स्थापन करके तीन बार मस्तक पृथ्वी पर, स्थाप के थोड़ा सा नीचे झुकके हाथ जोड़ के दशों नखों को मिलाके मस्तक पर अंजली करके ऐसे कहै नमस्कार होवे अरिहंत भगवंत प्रति यावत सिद्धिगति को प्राप्त हुए हैं। यहाँ यावत् शब्द से संपूर्ण शक्रस्तव कहना, पीछे वांदना नमस्कार करके जिन घर से निकले।

प्रिय ! बात जग जाहिर है कि द्रोपदी महासती ने जिनप्रतिमा पूजी और नमोत्थुणं किया है।

[१] भगवती स. २ उ. ५ तुंगीया नगरी के श्रावक
पा.यत् - [णिहाया कयबलिकम्मा]

टीकार्थ-स्नानान्तरं कृतबलिकर्म्मैः स्वगृह देवतानां ते तथा। मतलब प्रतिमा पूजी।

टब्बार्थ-ण्हाया-स्नान कीधी। कयबलिकम्मा-आपणा। घरना देवतानै कीधा बलिकर्म अर्थात् प्रतिमा पूजा करी।

(पूर्वपक्ष) उक्त श्रावकों ने कुल देवी की पूजा करी है।

(उत्तर पक्ष) प्रिय ! वे भगवान के श्रावक आप सरीखे नहीं थे भैरव, भवानी, चण्डी माता आदि को पूजते फिरे। उक्त श्रावक ने तो व्रत लेते ही अन्य देवों को पूजने का त्याग किया है। पाठ-

नो खलु मे भंते ! कप्पइ अज्जप्पभिइं च णं अन्नउत्थिया !
वा अन्नउत्थयदेवयाणिवा इत्यादि

इस पर गणधर भगवान ने मोहर छाप लगा दी है। वो भी सुन लीजिये।

(असहिज्जदेवा सुरनाग सुबण्ण जक्ख रक्खस किन्नर किंपुरिस)

अर्थ-श्रावक कोइ देवता का साज नहीं वंछय न वांदे, न पूजे। इतने पर भी कुल देवी पूजने का भ्रम दूर न हुवा हो तो और सुन लीजिये। श्री ज्ञाता सूत्र अ. ८ श्री मल्लिनाथ जी ने भी जिन प्रतिमा पूजी का पाठ-

(ण्हाया कयबलिकम्मा) सिद्ध हुआ।

(२) भगवती श. ७ उ. ९ वर्णनागनतुवेजी ने प्रतिमा पूजी।

(३) भगवती श. ११ उ. १२ आलंभिया नगरी के इसी भद्र पुत्र आदि बहुत श्रावकों ने जिन प्रतिमा पूजी।

(४) भ. स. १२-१ मंख पोखली आदि ने जिन प्रतिमा पूजी।

(५) भ. स. १२-२ जैवंती, मृगावती, उदाई राजा ने प्रतिमा पूजी और भी उदाइराजा मंडुक, श्रावक कार्तिक सेठ आदि का अधिकार है।

(६) ज्ञाता अ. ५ थावच्चा पुत्र आदि २५०० सौ मुनि श्री शत्रुञ्जय तीर्थ पर पधारे हैं।

(७) ज्ञाता अ. ८ श्री मल्लिनाथ प्रभु ने प्रतिमा पूजी और आचारांगादि ५ सूत्र तो लिख आये हैं। २६ सूत्र आगे लिखूंगा सों देख लेना आगे।

उत्तर : किसी के मन में ऐसी जिज्ञासा उठे कि द्रौपदीजी के विवाह में मांस मदिरा परोसा जाने के कारण वे सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकती तो पाठकों ! उत्तर सुनो, जैन सिद्धान्त में मदिरा मांस का आहार न तो द्रौपदी जी ने किया

है, न उन के सम्बन्धी कृष्ण, वासुदेव, पांडव आदि ने किया है, न कोई जैनी करते हैं।

वहाँ जो (उत्तर) ६ प्रकार का आहार बना उसका कारण यह है कि उस वक्त कोई समकिती तो कोई मिथ्यात्वी राजा आये थे। उन्हीं की राजनीति के अनुसार प्रबन्ध किया था। इस में द्रौपदी महासती को मिथ्यात्व का कलंक देना, प्रिय ! यह बात कितनी भूल की है।

(पूर्वपक्ष) द्रौपदी को समकित होती तो उनके घर में ६ प्रकार के आहार किस वास्ते होते ?

(उत्तरपक्ष) यदि घर में आहार होने से ही मिथ्यात्वी कहते है तो सुन लीजिये-

(१) सूत्र उपासकदशा अ. ८ महाशतक श्रावक के घर में ६ प्रकार का आहार होता था और महाशतक की स्त्री (रेवती) ६ प्रकार आहार करती थी। इसमें महाशतक श्रावक का श्रावकपना मानते हो या नहीं ?

(२) सूत्र उत्तराध्ययन अ. २२ उग्रसेन राजा की पुत्री राजमती के विवाह के अन्दर हजारों जानवर इकट्ठे किये थे। श्री नेमनाथ प्रभु आदि जान (बरात) लेके पधारे थे अब फरमाएँ राजमतीजी के समकित में कुछ शंका हैं ? देवी राजमतीजी के लिये गणधर भगवान ने फरमाया है (संजताए सुभासिय) राजमतीजी को संयती कहा हैं।

राजमती को तो सभी मानते हैं न ! उग्रसेन राजा तो समकिती थे। परन्तु विवाह में आये हुए कितने ही राजा उनके साथ में मिथ्यात्वी थे, इस लिये जानवर इकट्ठे किये थे।

बन्धु ! राजमतीजी और द्रौपदीजी दोनों समकित में दृढ और सती मानी गई हैं।

प्रिय ! जरा तो परभव का डर रखना। द्रौपदीजी के घर में जिन मन्दिर और भगवान की पूजा करनेवाली को मिथ्यात्वी कहना कितना अहित का कारण है। अगर कोइ ऐसा विकल्प निकालते है कि द्रौपदीजी ने जो मूर्ति पूजी वो अरिहंत की नहीं थी, कामदेव की थी।

तो भोले भाई ! सूत्र में (जिनपडिमा) कहा है। जिस को आप कामदेव (इलाजी) कहते हैं तो (कामदेव पडिमा) ऐसा कोई सूत्र का पाठ भी देना चाहिये। दूसरा नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं इत्यादि नमोत्थुणं का गुण कामदेव

में हैं कि अरिहंतो में है ? क्या आप तिण्णाणं तारयाणं कामदेव को ही समझते हैं। अस्तु-

अन्यतीर्थी ते उणरी प्रतिमा, 'नहि बंदुं जावजज्जीवजी'।
स्वतीर्थीरी प्रतिमा वंदु, ज्यां ने वंछे समकित जीवजी। प्रतिमा ॥ ९ ॥

अर्थ-सुगम सूत्राक्षर। सूत्र उपासक दशा अ. १ मूल पाठ-

नो खलु मे भंते कप्पइ अज्जप्पभिइं च णं अन्नउत्थिया वा अन्नउत्थियदेवयाणि वा अन्नउत्थिय परिग्गहियाइं अरिहंतचेइयाइं वा वंदित्ता वा नमंसित्ताए वा।

१ (टीका) नो खलु इत्यादि। नो खलु मम भदंत भगवन्! कल्पते युज्यते अद्यप्रभृति इतःसम्यक्त्वप्रतिपत्तिदिनादस्य निरतिचार सम्यक्त्वपरिपालनार्थं तदयतनामाश्रित्य अन्नउत्थि एति जैनयूथाद्यदन्यद्यूथं संघान्तरमित्यर्थंस्तदस्ति येषां ते अन्ययूथिकाश्चरकादिकुतीर्थिकास्तान् अन्ययूथिकदैवतानि बाहरि हरादीनि २ अन्ययूथिक परिगृहितानि वा अर्हच्चैत्यानि अर्हंतप्रतिमालक्षणानि, यथाभौतपरिगृहीतानि रुद्रमहाकालादीनिवदितुं अभिवादनतकर्तुं नमस्यतु वा प्रणामपूर्वकं ही प्रशस्त ध्वनिभिर्गुणोत्कीर्तनं कर्तुम तेषा मिथ्यात्वस्थिरीकरणादिदोषप्रसङ्गादित्यभिप्रायः ॥

२ **अर्थ**-हे भगवन्! मुझको न कल्पे। क्या न कल्पे सो कहते हैं। आज से लेके अन्यतीर्थी-चरकादि अन्यतीर्थी के देव हरि-हरादिक और अन्य तीर्थी के ग्रहण किये अरिहंत के चैत्य-जिनप्रतिमा इनकी वंदना करना नमस्कार करना नहीं कल्पता।

सच ही कहा हैं प्रभु वीर ने कि पंचम आरे के जीव ज्यादातर जड़ और वक्र रहेंगे। जड़ वो लोग हैं जो सत्य से अवगत होने के बाद भी अपने गुरु पर रही अंधश्रद्धा के कारण सत्य को नहीं मानते और वक्र वो हैं जो सत्य और असत्य क्या हैं यह जानते तो हैं पर वक्रता के कारण असत्य को सत्य बताने का भरपूर प्रयास करते हैं।

हाँ बहुत जिज्ञासू भी होते हैं जो दो पक्ष होने के कारण दुविधा में पड़ जाते हैं कि कौन सा पक्ष सच्चा हैं। उनकी जिज्ञासा के समाधान के लिये कुयुक्तियों का उत्तर सुयुक्ति से नीचे दिया गया हैं।

कुयुक्ति १ : यहाँ आनंद श्रावक ने अन्यतीर्थी द्वारा ग्रहण किये हुये ज्ञान

को वंदन नहीं करूँगा कहा हैं, यहां चैत्य का अर्थ ज्ञान हैं।

सुयुक्ति : अन्यतीर्थी द्वारा ग्रहण किया हुआ ज्ञान यानी स्थापना ज्ञान होता हैं, क्योंकि भाव ज्ञान तो अरुपी हैं और कोई भी अरुपी वस्तु पकड़ में नहीं आ सकती। अब अन्यतीर्थी द्वारा ग्रहण किये हुये स्थापना ज्ञान को वंदन नहीं करूँगा मतलब यही हुआ कि अन्यतीर्थी द्वारा ग्रहण नहीं किया हुआ ज्ञान यानी आगम आदि को वंदन करूँगा। (ग्लास आधा खाली हैं मतलब स्पष्ट हैं कि आधा भरा हैं, उसे अलग से बताने की जरुरत नहीं पड़ती।) अब आगम यह स्थापना ज्ञान हैं भाव ज्ञान नहीं। ज्ञान की स्थापना को वंदन करना मान्य हैं तो दर्शन, ज्ञान और चारित्र के त्रिवेणी संगम रुप जिनेश्वर की स्थापना को वंदन करना भी मान्य होना ही चाहिये।

कुयुक्ति २ : यहाँ आनंद श्रावक ने अन्यतीर्थी द्वारा ग्रहण किये हुये साधु को वंदन नहीं करूँगा कहा हैं, यहाँ चैत्य का अर्थ साधु हैं।

सुयुक्ति : पहली बात तो यह युक्ति ही मूर्खतापूर्ण हैं। अन्यतीर्थी द्वारा ग्रहित मतलब जबरदस्ती से कब्जे में की गयी। क्या किसी साधु को कोई जबरदस्ती बंधी बनाये तो वह साधु हमारे लिये अवंदनीय हो जाते हैं ? इससे स्पष्ट हैं कि यहाँ साधु अर्थ घटता ही नहीं। फिर भी प्राकृत से अनजान लोगों को ठगने के लिये कोई एसा कहे कि जिस साधु ने अन्यतीर्थ को ग्रहण कर लिया हो उसे वंदन नहीं करूँगा तो यह अर्थ भी गलत हैं।

अरिहंत का साधु भ्रष्ट हो के अन्य मत में चला गया हो उनको अरिहंत का साधु कोइ सुज्ञ कहेगा क्या ? जैन सिद्धांतों में तो उनको अन्यतीर्थी ही कहा है सो पहिले पाठ में आ गया हैं।

देखिये ! ज्ञाता सूत्र में सुकदेव संन्यासी, भगवती में खंदक संन्यासी, शिवराजकूषेश्वर, पोगल संन्यासी तथा कलौदेई आदि अन्य मत की श्रद्धा छोड़ के भगवान् के पास दीक्षा लेने से भगवान् के ही साधु कहलाये थे। आपके कहने से तो **(अरिहंतपरिग्गहिया अण्णउत्थीय चेइयाणि व)** होना चाहिये। परन्तु ऐसा पाठ गणधर महाराज ने नहीं फरमाया। सिद्ध हुआ तीसरे पाठ में चैत्यशब्द का अर्थ प्रतिमा हैं।

(पूर्वपक्ष) सूत्र में ऐसा पाठ तो नहीं कि आनन्द ने प्रतिमा वंदनी राखी। आप ऐसे किस आधार से कहते हैं ?

(उत्तरपक्ष) प्रिय ! सूत्र तो खुलासा पुकार रहा है, पर आपको अनदेखा

करना हो तो यह बतावें कि आनन्द श्रावक ने भगवान के साधु को वन्दन करूँगा यह किस पाठ में कहा हैं ?

(पूर्वपक्ष) अजी ! पहले पाठ में अन्य तीर्थी को नहीं वंदे मतलब स्वतीर्थी को वंदन करना अपने आप ही सिद्ध हो गया। जैसे झूठ बोलने का त्याग करने से सत्य बोलना अपने आप आ गया ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं।

(उत्तर.) प्रिय ! बोलने में न्याय, चलने में अन्याय। यह किसने सिखाया ! जब पहले पाठ से साधु वंदना सिद्ध किया तो दूसरे पाठ में अन्यतीर्थी के देव हरिहल-धर की मूर्ति नहीं वंदन करना मतलब अरिहंतों की मूर्ति को वंदन करना ही न्याय से सिद्ध हो गया।

(उत्तरपक्ष) प्रमाणिक अर्थ वही हैं कि जो पूर्व आचार्य कर गये हैं। हम आप से इतना ही पूछते हैं कि आनन्द श्रावक ने अन्य तीर्थियों का भाव निक्षेपा वन्दन करना छोड़ा हैं कि ४ निक्षेपा वन्दन करना छोड़ा हैं (त्याग किया है ?)

(पूर्वपक्ष) आनन्द श्रावक ने तो अन्य तीर्थियों के ४ निक्षेपों को वंदन करना त्याग किया हैं।

(उत्तरपक्ष) तो फिर तीर्थियों के ४ निक्षेपों को वंदना करना आप से ही सिद्ध हो गया।

(पूर्वपक्ष) अरिहंतो की प्रतिमा दूजा पाठ में वंदनीक हैं, तो फिर तीसरा पाठ किस वास्ते हैं ?

(उत्तरपक्ष) प्रिय ! जैसे बद्रीनाथजी में श्री पार्श्वनाथजी की प्रतिमा, जगन्नाथजी में श्री शांतिनाथजी की प्रतिमा, अन्यतीर्थी लोक अपना देव करके पूजते हैं, जैसे ही जिन प्रतिमा अन्यतीर्थी ग्रहण करते हैं, उस प्रतिमा को भगवान के श्रावक नहीं वंदन करते। अब सत्यासत्य का निर्णय करना आप का फर्ज है।

(पूर्वपक्ष) भला साहब ! आज जिस की श्रद्धामूर्ति पूजने की है। वो सामान्य श्रावक भी मन्दिर बना सकते हैं। आनन्द श्रावक तो धनाढ्य थे। उनके मन्दिर बनाने का अधिकार किसी सूत्र में है नहीं। तो फिर कैसे मान लिया जावे आनन्द श्रावक ने प्रतिमा पूजी ?

(उत्तरपक्ष) प्रिय ! आनन्द श्रावक का अधिकार उपाशकदशांगसूत्र में है। उस सूत्र के पद ११५२०००। जिनकी श्लोक संख्या तो बहुत होती है, उक्त शास्त्र में क्या-क्या बातें थीं। उसकी नुद श्री समवायांग सूत्र में है। सो सुनो पाठ-

से किं तं उवासगदसाओ ? उवासगदसासु णं उवासया णं णगराइं

उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडा रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ।

अर्थ-सुगम ! इसमें (चेइयाइं) शब्द का अर्थ टीका का टबा का (चैत्य) याने जिन मन्दिर का ही है। शायद चैत्य का अर्थ बाग, ज्ञान, साधु करो तो बाग ज्ञान साधु का पाठ अलग है। इसी से (चैत्य) का अर्थ श्रावकों का जिन मन्दिर ही है। शायद कोई तर्क करें कि उपासक दशा में मन्दिर नहीं किया (समाधान) उपासक दसा ११५२००० पद वाली लावो। हम बता सकते हैं। क्या उपासक दशा का कमग्रन्थ रहेने से समवायांग सूत्र झूठा हो गया ? प्रिय ! आनन्द श्रावक के जमाने को करीब २५०० वर्ष हुए हैं। परन्तु जिन मन्दिर तो हजारों वर्षों के मौजूद दृष्टि गोचर होते हैं। इतना ही नहीं बल्कि अंग्रेज विद्वानों ने भी कहा है कि जैनों में मूर्ति पूजा सनातन से ही चली आती है। आप को देखना हो तो भावनगर की छपी हुई मूर्ति मण्डन प्रश्नोत्तर देख लेना। सिद्ध हुआ कि सूत्र में तो प्रमाण आनन्दादि श्रावकों का जिन मन्दिर हैं और श्रावक जिन प्रतिमा वंदते पूजते हैं। देखो हमारी प्रतिमा शिखरबन्द मंदिर में बिराजे हैं, इसी में शंका करना ही समकित का भंग हैं। आत्मार्थी सज्जनों को सूत्रों पर परिपूर्ण आस्था रखनी चाहिये। तब ही समकित की नींव और कार्य आनन्द श्रावक की तरह सिद्ध होगा।

अंतगडने अणुत्तरोववाई। प्रथम उपांग री साखजी।
अरिहंतचैत्येनगरियां शोभे। श्रीजिनमुख से भाषजी, प्रति ॥ १० ॥

अर्थ-उक्त दोनों सूत्र में चंपानगरी के अधिकार में उववाई सूत्र की भोलावण है। यहाँ कोई ऐसा कहे की पाठांतर हैं तो जैन सिद्धान्त पूर्वधारी आचार्य ने पुस्तकारूढ मथुरा और वल्लभीपुर इन दो स्थलों में किया था। ये बात जैन जैनेतर में प्रसिद्ध है। जिसमें दोनों आचार्यों के लिये हुए पाठ का भावार्थ प्रिय ! यही है। सो पाठ देखो -

मूल	मूल
(यत् आयारवंतखेइया)	**(बहुलाअरिहंतचेइया)** जणवयसंणिविट्ठ बहुला इतिपाठान्तर।

टीका–श्री अभयदेवसूरिकृत चैत्यानि देवतायतनानि इत्यादि – नोट – स्यात् यक्षादिका मन्दिर कह दे तो यक्ष के मन्दिर का पाठ अगाडी अलग हैं।	**टीका–श्रीअभयदेवसूरिकृत – बहुलानि यस्यां सा तथा १ अरिहंतचेइयजणवयविमणी विद्दबहुलेतिपाठान्तरं तत्राईच्चैत्यानां जनानां दूतिनाञ्च विविधानि यानि पाठकास्तैर्बहलेति विग्रहः सूर्यांगचित्तचेइय जूपसणिविट्ठबहुला इति च पाठान्तर २।**
टब्बा–लूंका गच्छ श्री अमृतचन्द्र-सूरिकृत –छइ जिणनगरीइआकारवंत सुन्दराकार चैत्यप्रासाद देहरा छइ।	**टबार्थ**–लूंकागच्छ श्रीअमृतचन्द्रसूरि कृत बहुला कहितां घणा जिणी नगरीये अरिहंतना चैत्यप्रासाद देहरा घणा छै जिहां एहवो पाठान्तर छै।

देखिये ! पूर्वधारी आचार्य ने तो दोनों पाठ प्रमाण माने हैं। उस पर आप के बड़ों ने टब्बा किया हैं। प्रिय ! उक्त पाठ को प्रक्षेप कह देंगे तो भी दूसरे पाठ से भी मन्दिर तो सिद्ध हो गया। कोई कहें कि यह मन्दिर यक्ष का होगा, तो गणधर भगवान ने यक्ष का मन्दिर अलग फरमाया है।

तीसे णं चंपाए णयरिए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए पुणभद्दे णाम चेइए होत्था चिराइए।

प्रिय ! इस समय में सूत्र देख के निर्णय करनेवाले विद्वानों की संख्या दिन प्रतिदिन बढती जा रही है, इतना ही नहीं बल्कि अंग्रेज लोग भी जान गये हैं। जैसे डॉक्टर हरमन जैकोबी को जैनाचार्य श्री विजयधर्मसूरि का समागम जोधपुर में होने पर उन्होंने भी निश्चय कर लिया कि जैनियों में मूर्तिपूजा सनातन हैं।

उक्त दोनों सूत्रों में अनेक मुनियों द्वारा शत्रुंजय आदि पर्वत (तीर्थ) पर पधार के संथारा अनशन करने का वर्णन है। यह निमित्त कारण आप को भी अवश्य मानना ही पड़ेगा।

(१) अन्तगड सूत्र वर्ग ३ अ. ८ सुलसा गाथा पत्नी द्वारा हरिणैगमेषी देव की प्रतिमा पूजने पर देव की ही आराधना हुई है। वैसे ही जिन प्रतिमा पूजने से जिनेन्द्र देवों की आराधना होती है।

(पूर्वपक्ष) अजी ! उन्होंने तो लौकिक खाते पूजी है।

(उत्तरपक्ष) प्रिय ! लोकिक देव की मूर्ति लौकिक खाते पूज के अपना कार्य कर लिया, तो लोकोत्तर कार्य सिद्ध क्यों नहीं होगा ? अपितु अवश्य होवे।

(२) वर्ग ६ अ. ३ सुदर्शन शेठ श्रावक ने प्रतिमा पूजी है। **(ण्हाया कयबलिकम्मा)** यह गणधरों का वचन है, अस्तु॥ १०॥

प्रश्न व्याकरण पहिले संवर, पूजा अहिंसा नामजी। प्रतिमा।
वैयावच्च त्रीजे संवर, करे मुनि गुणधामजी॥ प्रतिमा.११॥

अर्थ-सूत्र प्रश्न व्याकरण अ. ६ मूल सूत्र (पूया ५७) टीका (भावतो देव पूजा आयतनं गुणानामाश्रयः) **टब्बार्थ**-भाव-थकी देवने पूजवो ते दया॥५७॥

भावार्थ-अहिंसा याने दया के ६० नाम हैं। जिनमें ५७वां नाम देव पूजा है। उक्त सूत्र अ. ८ में साधु प्रतिमा की वैयावच्च करे है। मूल पाठ-

केरिसए पुणाइ आराहए वयमिणं जे से उवहि भत्तपाणसगहणदाणकुसले अच्चंतबालं दुब्बलमिलाण बुड्ढ खमगे पवत्ति आयरिय उवज्झाए सेहे साहम्मिए तबस्सी कुलगणसंघचेइयट्ठेय निज्जरट्ठी वेयावच्चै अणिस्सियं दसविहं बहुविहिं करेइ।

अर्थ-शिष्य पूछता है "हे भगवन्! कैसा साधु तीसरा व्रत आराधे? गुरु कहते हैं - जो साधु वस्त्र तथा भातपाणी यथोक्तविधि से लेना और यथोक्तविधि से आचार्यादि को देना तिन में कुशल होवे सो साधु तीसरा व्रत आराधे। अत्यंत बाल (१) शक्तिहीन (२) रोगी (३) वृद्ध (४) मास क्षमणादि करनेवाला (५) प्रवर्त्तक (६) आचार्य (७) उपाध्याय (८) नयादीक्षित शिष्य (९) साधर्मिक या तपस्वी (११) कुल-चान्द्रादिक (१२) गण-कुल का समुदाय-कोटीकादिक (१३) संघ-कुलगण का समुदाय चतुर्विध संघ (१४) और चैत्य-जिन प्रतिमा इनको जो अर्थ तिन में निर्जरा का अर्थी साधु कर्मक्षय वांछता हुवा यश मानादिक की अपेक्षा बिना दस प्रकार से तथा बहुविधि से वैयावच्च करै, सो साधु तीसरा व्रत आराधे। इसी में **(चेइयट्ठे निज्जरत्थी) इसका अर्थ टीकाकार श्रीअभयसूरि (चैत्यानि जिनप्रतिमा एतासां योर्थः प्रयोजनं स तथा तत्र स निर्जरार्थी कर्मक्षयकामः वैयावृत्त्यं)**

कई अमूर्तिपूजक प्रश्न के पाँचवे अध्ययन का पाठ **(चेइयाणि वणसडो)** और अध्ययन १० का पाठ **(भवण तोरण चेइय देवकुल सभा पवाइति)** यह दोनों पाठों में (चैत्य) का अर्थ प्रतिमा करते है और तीसरे संवरद्वार में (चैत्य) अर्थ ज्ञान करते हैं तो कही चित्त की प्रसन्नता तो कही कुछ वाचक वर्ग स्वयं विचार ले कि क्या यह न्यायबुद्धि है?

(प्रश्न) क्यों जी ! आप उक्त दो पाठ में (चेईय) शब्द का क्या अर्थ करते हो ?

(उत्तर) प्रिय ! हमारे तो जो पूर्व आचार्य अर्थ कर गये हैं वही अर्थ है। उक्त सूत्र में ३ जगह (चेईय) शब्द है उसका पूर्वाचार्य ने (प्रतिमा) ही अर्थ किया है (१) चैत्यवृक्ष।

[१] प्रश्न. अ. १ आश्रवद्वार में (चेईय) प्रतिमा है। परन्तु वह प्रतिमा किसकी है ? करानेवाला कौन है ? जिसका अधिकार सुन ! प्रथम आश्रव द्वार है हिंसा। जिसके भेद ५ हिंसा (१) हिंसा का नाम (२) हिंसा करने का कारण (३) हिंसा करनेवाला (४) हिंसा का फल (५) प्रथम हिंसा।

१ पावो चंडो रुद्दो खुद्दो साहसिओ अणारिओ निग्घिणो निस्संसो इत्यादि।

अर्थ-पापप्रकृतिना बन्धन नोकारण चंड रौद्र क्षुद्रः अणविमास्यौ प्रवृत्यौमलेच्छादि ना प्रवत्या व्याथी अनार्य पापनी निंदारहित सुग्या रहित इत्यादि।

२ हिंसा के तीस नाम पाणवह इत्यादि।

[२] पाणवहस्स कलुसस्स कडुयफलदेसगाइं तं च पुणकरेंति केइ पावा असंजया अविरया अणिहुय परिणामदुप्पओगी पाणवहं भयकरं बहुविहं बहुप्पगारं इत्यादि।

प्राण वध आदि तीस नाम है।

[३] बह वेतसा पाणा इत्यादि अनार्य का कार्य घरहाट खेती आदि करसाणकर्म सभा तोरण देवकुल पगलीया प्रतिमा स्थूप आदि बहुत विस्तार है। नोट-क्या श्री रुषभदेव प्रभु के निर्वाण के बाद ३ स्थूप इंद्र महाराज ने कराई वो भी इसी में मानोगे ?

तीसरे अधिकार में जलचर, थलचर, खेचर, उरपुर, भुजपुर, चोरेंद्री जाव एकेंद्री तक जीवों की हिंसा **जीवकामत्थ धम्महेउं काम विषय अर्थ धन्य धर्म। टीका-वेदार्थाश्च वेदार्थमनुष्ठाना** टबार्थ-वेदार्थी अनुष्ठानयवादिहोमे जीवीतव्यनेऽर्थे तथा आचार, इत्यादि हिंसा करनेवालों को मंदबुद्धि कहा है। क्या आपका स्थानक इस में आ गया ?

[४] हिंसा करनेवाला **कूरकम्मकारी इमे य बहवे मिलक्खु जाइ। के ते सक जवण सबर बब्बर गायमुरुंडी दभडग तिशिय पक्वणिया कुलक्खा गौंड सिंहल पारस कोचअन्धदविल बिल्लल पुलिन्द अरोस इत्यादि।**

अर्थ-क्रूरकर्म का करनेवाला घणा म्लेच्छ देश का पन्नवणा सूत्र में अनार्य देशों का नाम कहा है। कहां ते सक्क देशनां यवन देशनां सबर बच्छर कायमरुडां उट्टुभडग मित्तिक पक्वणिककुलाक्ष गोडीसिहल पारसक्रौंच अंधडविड बिलकल पुल्लिंद्र आरोप इत्यादि।

[५] तस्स य पावस्स फलविवागं अयाणमाणा वड्ढं त्ति महब्भयं अविस्समावेयणं दीहकाल बहुदुक्खसंकडं नरय तिरिक्ख जोर्णि इओ आउक्खए चुया असुभ कम्म बहुला उववज्जंति नरएसु हुलितं महालएसु इत्यादि।

भावार्थ-पाप करनेवाले को फल नरक तिर्यंच का घोर दुःख बताया है। इत्यादि।

प्रिय पाठको ! उक्त पाँच अधिकार संक्षेप से कहे हैं। विशेष देखना हो तो सूत्र मेरे पास मौजूद है। देख लेवें, प्रिय ! अधिक खेद का विषय तो यह है कि उक्त पाँच अधिकार अनार्य मिथ्यात्वी के वास्ते हैं। परन्तु हमारे स्थानकवासी भाई मूर्ति उत्थापने के लिये खुद ही उक्त पाठ से शामिल हो गये हैं। मगर उन लोगों को यह ख्याल नहीं है कि श्री आचारांग सूत्र में भगवान ने फरमाया है सम्मत्त दंसी न करंति पावं यह वचन हंमेशा स्मरण रखना। सम्यक्दृष्टी ऐसा पाप कदापि न करें, जो करें तो समकित रहे नहीं।

पूर्वपक्ष-क्या समकिती को पाप नहीं लगता ? देखो ! द्वार में क्या हुवा ? घर, हाट, मन्दिर, थानक आदि को सम्यक्दृष्टि भी करते हैं।

उत्तरपक्ष-प्रिय ! जैसा अधर्म द्वार में अनार्य मिथ्यात्वी अशुभ परिणाम माठी लेश्या पाप की सुग्य रहित लोहीवरिया हाथ चोकणा पाप करे हैं। वैसा पाप सम्यक्दृष्टि नहीं करते। देखो भ. स. पु. ९ वर्णनागनतुवा नतुवी चेडा राजा आदि संग्राम में पञ्चेन्द्री मनुष्य का वध उन्हीं के हाथ से हुआ था। परन्तु उनको श्रावक कहा है। न तो मंदबुद्धि या नरकगामी तथा भगवती में मिथ्यात्वी किराणों बेचे तो ५ क्रिया, वोहि ज किराणो सम्यक्दृष्टि बेचे तो ४ क्रिया लगे। प्रिय ! समझने को इतना ही है कि जो रुद्रपरिणामवाली अनंतानुबंधिचोकडी मिथ्यात्वी की है, जिससे वो पाप कर मन में राजी हुये और उक्त चौकडी सम्यक्दृष्टि के नहीं है, जिससे मंद परिणाम से पाप करे तो भी पश्चाताप करे। जिससे सम्यक्दृष्टि को अधर्म द्वार नहीं समझना ए सम्बन्ध गृहवास का है और जो मिन्दर करणा है रीतिकेवल धर्म का ही कार्य है। इसी से **(सम्मत्त दंसी न**

करंति पावं) कहा है। इतने पर भी कोई मत कदाग्रही कहेगा कि नहीं हम तो हिंसा करनेवालों को अधर्म द्वार में ही समझेंगे। उनसे हम एक ही बोल पूछते हैं-

श्री मल्लिनाथ प्रभुने अपनी मूर्ति कराई, उस में पृथवीकाय की हिंसा हुई और उसमें एक एक ग्रास हंमेशा डालने से असंख्य जीवों की आहुती हुई। ये काम भी ६ राजाओं को धर्म में प्रतिबोध करने के लिये ही किया था, अब आपके हिसाब से इन परमेश्वर को किस द्वार में गिनोगे ?

(प्रश्न) अजी महात्माजी ! ऐसा अर्थ न तो पहले मैंने पढा है न मैने किसी से सुना, मैंने तो यही सुना था कि मूर्ति मन्दिर अधर्म वाली द्वार में है। परन्तु आज सूत्र सुनकर मेरा भ्रम दूर हो गया है। अब आचारांग में जो **'जाई मरण मोयणाए'** इन शब्दों का अर्थ सुनना चाहता हूँ। सो आप कृपा कर सुनावें।

(उत्तर) अहो सत्यचन्द्र ! ऐसा अर्थ आगे नहीं सुनने का कारण यही है कि अभी कितने ही लोक गाडर प्रवाह में लग जाते है। परन्तु उसके तात्पर्य समझनेवाले तुम्हारे सरीखे बहुत कम हैं, लोग जहाँ काम पडे तब **'चेइय'** पाठ दिखाके कह देते हैं कि देखो भाई 'मन्दिर प्रतिमा' अधर्म द्वार में है। भोले भद्रिक जीव देख के भ्रम में पड़ जाते हैं। परन्तु अब तो कितने ही लोग तुम्हारे जैसी खोज करने लग गये हैं।

मूल सूत्र **'जाई मरण मोयणाए'** इस पर श्री भद्रबाहु स्वामी कृत निर्युक्ति शीलांकाचार्य कृत टीका है। श्री जिनहंस सूरि कृत **दीपिका-यत् जातिमरणमोचनार्थं कर्माददते तत्र जात्यर्थं कार्तिकेयवदनादिका: क्रिया विधते य: कार्तिकेयं वंदते स: उत्तमजातिं लभते तथा यान २ कामान् ब्राह्मणभ्यो ददाति तांस्तान् अन्यजन्मनि लभते इत्यादि कुमार्गोपदेशात् हिंसादौ प्रवृत्तिविदधाति तथा मरणार्थं पितृपिंडदानादिषु अथवा ममानेन संबंधीव्यापादितस्तस्यवैरनिर्यातनार्थं वधबन्धादौ प्रवर्तते, यदि वा मरणनिवृत्यर्थमात्मानो दुर्गाद्युपयांचितमजादिना बलिं विधत्ते तथा मुक्त्यर्थं अज्ञानावृतचेतस: पंचाग्नितपोनुष्ठानादिषु प्राण्युपमर्दकारिषु प्रवर्तमाना: कर्माददते, यदि वा जातिमरणयोर्मोचनाय हिंसादिका: क्रिया: कुर्वते।**

देखो ! मिथ्या जिनाज्ञा विपरीत मृतपिंड, यज्ञ, होम, पंचअग्नि आदि क्रिया करे, उसे धर्म कहे। उनको बोधबीज नहीं मिले। परन्तु ऐसा नहीं कहा कि मन्दिर स्थानक करानेवाला। बंधव ! इतना तो विचार करना चाहिए, जो जैनी भगवान की भक्ति करता हो उसका बोधबीज का नाश हो जावे तो क्या

भगवान को नहीं मानें-गालियां दे, निन्दा करें, वचन उत्थापे उनको समकित आयेगा ? अपितु कभी नहीं।

प्रिय ! सुयगडांग या प्रश्न व्याकरण में नारकी को परमाधामी पूर्व भव में किये पापो को याद दिलाकर मारते हैं, परन्तु ऐसा नहीं कहते कि तूने पूर्वभव में जिन मन्दिर बनाया था या जिन प्रतिमा पूजी थी, स्थानक कराया था, यहाँ कहने को बहुत हैं लेकिन ग्रन्थ बढ जाने से नहीं लिखते। विद्वानों के लिए इशारा भी असरकारी होता है।

(प्रश्न) ऐसा अर्थ सूत्र में हो तो फिर स्थानकवासी दूसरा अर्थ किस आधार से करते हैं ?

(उत्तर) प्रिय ! आधार तो टीका का ही है। परन्तु जहाँ जिन प्रतिमा का अधिकर आता है वहाँ मनमाने अर्थ कर देते हैं। जिसमें भी सब टोले की एक मति नहीं है। कहो ! आप किस का अर्थ सच मानोगे ?

(प्रश्न) हमको तो जो आपने लिखा वो पूर्वाचार्यों का ही अर्थ प्रमाण है। अब आप के तीन पाठों की कृपा करें।

[२] उक्त सूत्र अ. ५ मूल पाठ 'चेइयाणि य वणसंडे' टीकार्थ-चेइयाणि त्ति चैत्यवृक्षान् आरामादीनां टब्बार्थ-चैत्यवृक्ष मोटा वन।

यत् न सो परिग्गहो वृत्तो नायपुत्तेण ताईणा मुच्छा परिग्गहो वुत्तो। इए वुत्तं महैसिणा ॥ २१ ॥ दश. ६ ॥

भावार्थ-परिग्रह ममता-मूर्छा को कहा है।

३ उक्त सूत्र अ. ८ (चेइयट्ठे) **टीका**-चैत्यानि जिन प्रतिमा। **टब्बा**-जिन प्रतिमा साधु प्रतिमा की वैयावच्च करे याने कोई जिन प्रतिमा की आशानता करता हो तो साधु उसको उपदेशादिक देकर आशातना निवारे। जैसे व्यवहार सूत्र उ.।१०। सिद्ध की वैयावच्च करनेवाला जीव कर्म की निर्जरा करता है। अब बतावो साधु सिद्धों की वैयावच्च किस तरह से कर सकते है ? यहाँ स्पष्ट हुआ साधु को सिद्धों की प्रतिमा की वैयावच्च करना चाहिए। देखों ! जैसे आप के गुरुजी के फोटू पर कोई अज्ञानी बालक पेशाब करता हो तो आप उस बालक को उपदेश देके फोटू बचाओगे कि नहीं ? जैसे एक गाँव में वैष्णवों के मन्दिर में एक मुखबन्धे साधु की मूर्ति बनाकर उसकी आशातना करते थे। फिर स्थानकवासी श्रावकों को मालूम पड़ा तो उनके साथ विवाद कर उस साधु की आशातना टलवाई, अब आप स्वयं विचार करें।

४ अ. १० साधु (चैत्य) नहीं देखें। वह चक्षु इंद्रिय के विषय का वर्णन है। सो घर, हट्ट, तोरण, दरवाजा, नगर, देवकूल, प्रतिमा आदि चक्षु इन्द्रिय के विषय पोषण के लिये नहीं देखे। परन्तु मन्दिर न जाना, प्रतिमा नही वन्दना ऐसा आशय नहीं है। ऐसा हो तो फिर गणधर महाराजने प्रतिमा नहीं वान्दने पर प्रायश्चित क्यों कहा हैं ? स्वंय ही विचार कर ले। प्रिय ! ऊपर जो चैत्य शब्द का अर्थ लिखा है वो मेरी मति से नहीं, परन्तु श्री भगवान ने जो फरमाया उस अनुसार पूर्वधारी आचार्यों ने कहा है।

पूर्वपक्ष : प्रतिमा क्या आहार पानी करती है ? जो साधु को उनकी वैयावच्च करनी चाहिए।

उत्तर : प्रिय ! केवल आहार पानी करनेवाले की ही वैयावच्च की जाती हैं, तो साधु, संघ, गण, कुल की वैयावच्च कैसे करें ? संघ में श्रावक भी शामिल है। इस अर्थ से तो साधु को श्रावकों को भी आहार पानी लाकर देना पड़ेगा।

पूर्वपक्ष : आप उक्त पदों का क्या अर्थ करते हैं ?

उत्तर : हमारे तो जो पूर्वाचार्य अर्थ कर गये हैं। वही करते हैं। **संघ गण कुल प्रतिमा** इनकी कोई निन्दा हीलना आशातना करता हो तो उसको उपदेश आदि से आशातना नहीं करने देना, यह वैयावच्च है। जैसे हरीकेशी मुनि की यक्ष ने वैयावच्च की, इत्यादि से सिद्ध हुआ कि साधु को प्रतिमा की वैयावच्च करनी चाहिए।

विपाक में सुबाहुप्रमुख। आणंद सरीखा जोयजी ॥ उववाई
अरिहंत चेइयाणि, अंबड प्रतिमा वंदी सोयजी, प्रतिमा. ॥ १२ ॥

अर्थ-श्री विपाकसूत्र में सुबाहु आदि श्रावकों का अधिकार है, आनन्द श्रावक आदि जिन प्रतिमा वांदी पूजी वह गाथा आठवीं के अर्थ में देख लें और उववाई सूत्र में चंपानगरी में जिन मन्दिर कहा है, उसका सूत्र पाठ-

(यत् बहुला अरिहंत चेइया) टीकार्थ और टब्बार्थ को गाथा १० के अर्थ में देख लें, अब अंबड श्रावक का अधिकार। सूत्र पाठ-

अंबडस्स णो कप्पइ अन्नउत्थिया वा अणउत्थियदेवयाणि वा अण्णउत्थियपरिग्गहियाणि वा चेइयाइं वंदित्तए वा णमंसित्तए वा जावपज्जुवासित्तए वा णण्णत्थ अरिहंते वा अरिहंत चेइयाणि वा।

टीकार्थ-गाथा ९मी में आनन्द श्रावक का आलावा देख लें। यहाँ

(अरिहन्तचेइयाणि वा) टीकाकार ने अर्हच्चैत्यानि जिन प्रतिमा इत्यर्थ ऐसा अर्थ किया है।

टब्बार्थ-अंबड नाम संन्यासी नइ न कल्पै जैन ना श्रमण साधु थी बाह्य, शाक्यादिक अन्य दर्शनी शाक्यादिक अन्यतीर्थीना देवता हरिहरविरंचिप्रमुख अन्य तीर्थी शाक्यादि कइ परिग्रह्या आपणा करिने थाप्या लेखव्या अरिहंतना चैत्य वीतराग प्रतिमा वांदिवा हाथ जोडीनइ स्तुति करीबो, नमस्कार-पंचांग प्रणाम करीवओ, जावशब्द थकी सत्कारादिक ना बोल पर्युपासना मन वचन कायाइ सेवा न करीवो, अनेरु न कल्पै। तो स्युं कल्पै ? अरिहंत साक्षात् वीतराग अनन्त ज्ञानी ते अरिहंतना। चैत्य जिन प्रतिमा जिननी थापना ने वांदिवा नमस्कारादि करीवो कल्पै। प्रिय ! सूत्रार्थ में खुलासा जिन प्रतिमा वंदनी गणधर भगवानने फरमा दिया है।

'अरिहन्तचेइयाणि वा' का अर्थ साधु करके कई लोग उस पर जैन. दि. श्री कुन्दकुन्दाचार्य का नाम लेकर भद्रिक जीवों को जाल में फंसाने का प्रयत्न करते हैं। प्रियवर ! जैन श्वेताम्बर हो या दिगम्बर किसी आचार्य ने अंबड अलावे में **'अरिहन्तचेइयाणि वा'** का अर्थ साधु किया हो तो हम प्रमाणिक मानें, परन्तु किसी आचार्य ने ऐसा अर्थ नहीं किया है। उक्त आचार्य महाराज का ग्रन्थ सच मानना कबूल करते हो तो हम श्री कुन्दकुन्दाचार्य के बनाये बहुत ग्रन्थों में श्री जिन प्रतिमा साधु श्रावक को वन्दनी पुजनी कहा है वह दिखला देवें। वर्तमान में भी दिगम्बर जैनी जिन प्रतिमा को मानते हैं। भग. स. ३ उ. चमरेन्द्र अधिकार **(णण्णत्थ अरहंते वा अरहंतचेइयाणि वा अणगारे वा भावियप्पाणो)** इसमें साधुका तीसरा पाठ अलग है।

सूत्र में साधु के १३ नाम कहे हैं। श्री सुयगडांग सूत्र अ. १३-

१ समणेति वा २ माहणेति वा ३ खंतेति वा ४ दन्तेति वा ५ गुत्तेति वा ६ पूतेति वा ७ इसिति वा ८ मुणीति वा ९ कित्तीति वा १० विदुति वा ११ भिक्खुति वा १२ लूहेतिवा १३ तीरट्ठीतिवा इति।

देखो गणधर महाराजने साधु के तेरह नाम कहे हैं। परंतु चौदमां **(अरिहन्तचेइयाणि वा)** नहीं कहा। अब भी कुछ भ्रम रहा है ?

(पूर्वपक्ष) अरिहन्त और प्रतिमा वन्दनीय है, तब तो साधु अवन्दनीय ठहरेंगे ?

(उत्तर) जो तुम साधु अर्थ करोगे तो आचार्य उपाध्याय साध्वी भी

अवन्दनीय ठहरेंगे।

प्रिय ! जैन सिद्धान्तों के रहस्य को समझो। जैसे एक सेठ के नाम का न्योता आवे उसी में सेठ का बेटा-पोता आदि सब भोजन के लिए जा सकते हैं। ऐसे ही अरिहंत के नाम में आचार्य उ. साधु २ आ गया। (संग्रहनयमत से) सिद्ध हुआ दूसरे पाठ में प्रतिमा अंबड श्रावक ने वांदी है।

(पाठको ! अन्य सूत्र में नगरी बाग भगवान का समोसरण तथा पुरुष वांदवा जाने के अधिकार में उववाई की भोलामण दी जाती हैं। कारण (उववाई) में विस्तार से वर्णन किया है। जिसमें भगवान का समोसरण संक्षेप से लिखता हूँ। चित्र में देखो।)

प्रिय ! भगवान के समोसरण में तीन दिशा में बिंब 'प्रतिमा' स्थापना है। जिसको चतुर्विध संघ वन्दे पूजते हैं और समोसरण में फूल ढींचण 'गोडा' परिमाण होते हैं। अब प्रतिमा वन्दने पूजने में क्या अक्लमंदों को कुछ भी शंका रहती है, अपितु कभी नहीं।

(प्रश्न) फूल सचित है, भगवान की द्रव्य पूजा करते हो तो ५ अभिगम में सचित वस्तु बाहर रख जाने का क्यों कहा हैं ?

(उत्तर) प्रिय ! बाहिर रखना वह अपने उपयोग की वस्तु। जैसे पहनने की फूल माला, खाने का पान आदि। परन्तु पूजा की सामग्री नहीं समझना। देखो इसी उववाई सूत्र में वन्दना के अधिकार में गणधर महाराज ने पाठ में फरमाया है। मूल पाठ-

बहवे राइसर तलवर माडंबिय कोडुं बिय इब्भ सेट्ठ सेनावइ सत्थवाह पभितिआ अप्पगइया वंदणवत्तियं अप्पेगइया पूअणवत्तिय एव सक्कारवत्तियं सम्माणवत्तियं इत्यादि।

अर्थ-अनेराइ बहवे घणा राजा मंडलिक ईसर युवराजा तलवार मउडबंदराजा माडंबिय मडंवता अधिपति कोडुं बिय कुटुंबना नायक गजांतलक्ष्मी जेहने नगर सेठ बड़ा सेना चतुंरग सेना कटकना नायक सार्थवाह सायतांडासी सोमितना चलावणहार प्रभृतिए आदि देहनइ एकेक पूर्वइ कह्या ते वांदि वा स्तुति करवा तिणेइ ज निमित्त आवे, एकेक पूजा जिम पुष्पादिक पूजिये तिम पूजाने इज निमित्ते आवे, इम सत्कार वस्त्रादिक जिम सत्कारने ज निमित्त आवे, सन्मान उठी उभां थाइवो बहुमान देवो तिणो निमित्त आवे।

अणुयोगद्वार सूत्र मूल पाठ **(तिलुक्कमहित पूइयेहिं)**

अर्थ-त्रिलोक्य त्रिभुवनपति व्यंतर नर विद्याधर वैमानिकादिक समुदाय रुप तेणे महित कहतां आनन्दाश्रुवहति दृष्टि से सहर्षपणे निरख्या छे, जे भगवन्त तेणे तथा महिता केवल गुणोत्कीर्तनरुप जे भावस्तव तेणे तथा पूजित कहतां चन्दन पुष्पादिक द्रव्यपूजा करी पूज्या छे जे भगवन्त।

अब समोसरण में फूलों की वर्षा का पाठ समवायांग सूत्र में है। मूल पाठ-

जलथलयभासुरपभूतेणं विंटट्ठावियदसद्धवन्नेणं कुसुमेणं
जाणुस्सहप्पमाणमित्ते पुप्फोवयारे किज्जइ ॥ १८ ॥

अर्थ-स्थल कुसुम मे चम्पाजाई प्रमुख जल कुसुम ते कमलादिक भास्वर तेजवन्त प्रभूतघणा नीचा छे, बीट जेहना एतले उर्द्धमुखे पाँचवर्ण फुल्ले करी ढींचण प्रमाण फूलनी पूंज फूल पगर करे इत्यादि।

प्रिय ! मूर्ति पूजा के प्रमाण में कुछ कसर रही है ? देखो ! आप के तेरापंथी ने एक दया उत्थापण करने के लिये कितनी कुयुक्तियाँ तैयार की हैं ? वैसे ही आपको भी एक जिन प्रतिमा न मानने के कारण श्री तीर्थंकर गणधर और पूर्व आचार्यों के वचनों की आशातना करनी पड़ रही है। तो भी अन्त का तन्त में तो झूठ झूठ ही रहेगा। स्मरण रहे ! आखिर तो मूर्ति पूजा बगैर मोक्ष नहीं है। कारण आपकी श्रद्धा से आपकी गति देवलोक की होगी वहाँ तो मूर्ति पूजना ही पड़ेगा। कहो फिर आपको यह संसार वृद्धि की कुयुक्ति करने में क्या फायदा हुआ ? बन्धवो ! इस प्रवृत्ति को छोड़ के श्री वीतराग देवों के वचन पर आस्था रख के ऊपर लिखी मूर्ति पूजा की सम्यक् प्रकार श्रद्धा रखो। जिससे आपका जल्दी कल्याण हो। इति ॥१३॥

रायपसेणीसुरियाभे व पूजी। जीवाभिगमविजयसुरङ्गजी।
धूवं दाउणं जिणवराणं ठवणे सच्चे चौथे उपाङ्गजी, प्रतिमा. ॥ १३ ॥

अर्थ-रायपसेणी सूत्र में सुरियाभ देवने जिन प्रतिमा की १७ प्रकार से पूजा की उसका वर्णन है। यह बात जैनियों में प्रसिद्ध हैं। तत्र मूल सूत्र पाठ-

एवं खलु देवाणुप्पियाणं सुरियाभे विमाणे सिद्धाययणे अट्ठ सयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेह पमाण मेत्ताण संण्णिखित्तं चिट्ठंति। सभाएणं सुहम्माए माणवए चेइए खंभे वइरामए गोलवट्ट समुग्गए बहुओ जिणसकहाओ संण्णिखित्ताओ चिट्ठंति ताओणं देवाणुप्पियाणं अण्णेसिं च

बहुणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव वंदणिज्जाओ णमसणिज्जाओ सक्कारिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मङ्गलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जाओ तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पुण्विं करणिज्जं एयं णं देवाणुप्पियाणं पच्छाकरणिज्जं तं एयं णं देवाणुप्पियाण पुव्विं पच्छावि, हियाए, सुहाए, खमाए णिस्सेयसाए आणुगामित्ताए भविस्सइ ॥

भावार्थ-सुरियाभ देवने उत्पन्न होते ही विचार किया की मुझे पहले और पीछे, कौन सा कार्य हित का, सुख का, कल्याण का, मोक्ष का करना है, कौन सा कार्य भवोभव में साथ चलनेवाला है ? तब सुर्याभ देव के सामानिकदेव तथा पर्षदा के देव हाथ जोड़ के कहते हैं-"स्वामी इस विमान में सिद्धायतन में १०८ जिन प्रतिमा जिनेन्द्र देवों का शरीर प्रमाण हैं याने (जघन्य ७ हाथ उत्कृष्ट ५०० धनुष्य की अवगाहना) तथा सुधर्म सभा में जिनेश्वर भगवान की डाढा है। वो आप को या अन्य कितने ही देवताओं को वंदने पूजने यावत् सेवा करने योग्य है। यही पहले-पीछे हितकारी, यावत् सुखकारी, कल्याणकारी, मोक्षकारी यह करनी भवोभव में साथ चलनेवाली है।"

इसी तरह जीवाभिगम सूत्र में विजय देवता की पूजा का भी वर्णन हैं। जिसका फल यावत् मोक्ष गणधर भगवान ने फरमाया हैं। कितनेक भाई 'जिन प्रतिमा जिन सरीखी' कहने में हिचकते हैं। परन्तु श्री गणधर भगवान **(धुवं दाउणं जिणवराणं)** यह फरमाते हैं कि धूप दिया जिनराज को। जैसा गणधर भगवंत ने फरमाया है वैसे ही हम जिन प्रतिमा को जिनेश्वर कहते हैं। क्या गणधर भगवान के वचन को आप सच्च नहीं मानते हो ? प्रिय ! जैसे भैरव की मूर्ति को भैरव कहते है। लकड़ी के घोड़े को घोड़ा कहते हैं तो भगवान की मूर्ति को भगवान कहने में क्या हरज हैं ? देखो ! अंतगडसूत्र में द्वारकानगरी को **पाठ पच्चक्खदेवलोगभूयाए** कहा है तथा भगवती आदि में **(इंदमहेतिव)** आदि कहा है। इसी से सिद्ध हुआ कि जिन प्रतिमा जिन सरीखी कहना सूत्र से प्रमाणित है।

आगे चोथा उपांग पन्नवणाजी जिसके पद ११वे में **(ठवणे सच्चे)** कहा है तथा चम्पा आदि नगरी में अरिहंतों का मन्दिर हैं। जिसका वर्णन पहले आ गया है।

जो स्वयं वीर पुत्र है वह तो वीर के वचन रुप आगमों पर ही दृढ विश्वास रखेगा। उन्हीं का कार्य सिद्ध होगा ॥१३॥

प्रथम तीर्थंकर मोक्ष सिधाया। थूभ कराया तीन जी।
जंबूद्वीप पन्नत्ति देखो। सुरहोयभक्ति में लीन जी॥ १४॥

जंभकदेवता प्रतिमापूजी शाश्वतासिद्धायतनबहुजाणजी।
चंदपन्नति सूर्यपन्नति। प्रतिमा कही विमानजी, प्रतिमा.॥ १५॥

अर्थ-सूत्र जंबुद्वीप पन्नति में भगवान ऋषभदेव मोक्ष पधारे तब शक्रेन्द्र के आदेश से देवों ने तीन चैत्य स्थंभ करवाये थे उसका वर्णन है। सूत्र पाठ-

यत् खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया सव्वरयणामए महइमहालए तओ चेइयथुभेकरेह। एगं भगवओ तित्थगरस्स चिइगाए एगं गणहरचिइगाए एगं अवसेसाणं अणगाराणं चिइगाए।

टीकार्थ-सर्वस्पष्टं। नवरं सर्वात्मनारत्नमयान् अन्तर्बहिरपिरत्नखचितान् महातिमहतोऽति विस्तीर्णान् आलप्रउयय: स्वार्थिक: प्राकृतप्रभव:, त्रीन्, चैत्यस्तूपान् चैत्याश्चित्ताह्लादका: स्तूपाश्चैत्य स्वरुपास्तान् कुरुत चितात्रयक्षितिष्वित्यर्थ आज्ञा करण सूत्रे।

टब्बार्थ-इन्द्र कहे उतावलो अहो देवानुप्रिय ! सर्व रत्नमय मोटा अत्यंत विस्तीर्ण एहवा त्रीणिस्थूभकरो। एक भगवंत तीर्थ करनी चयने विषय, एक गणधरनी चयने विषय, एक अवशेषकता साधु नीचयने विषय, तिवारइं ते घणा देवता जाव स्थूभ करे।

(प्रश्न) यह तो देवता का जीत आचार है। परन्तु धर्म नहीं। सूत्र में इसे धर्म कहा हो तो मूल सूत्र पाठ बतलाना चाहिए।

(उत्तर) प्रिय ! अव्वल तो यह समझो जीत आचार किस को कहते हैं ? सो सुनो ! जीत (याने) अवश्यमेव करने का काम। जैसे श्रावक समायिक प्रतिक्रमण करते हैं, वह जीत आचार है और तुम कहते हो कि मूल पाठ बतलाना था, लो सुनो-

केई जिणभत्तीए केई जीअमेअंतिकट्टु केई धम्मोत्ति कट्टु गेण्हंति।

टीकार्थ-केचिज्जिनभक्त्या जिने निर्वृत्ते जिनसक्थि जिनवदाराध्यमिति केचिज्जी तमिति पुरातनैरिदमाचीर्णमित्यस्माभिरपीद कर्त्तव्यमिति केचिद्धर्म्म: पुण्यमिति कृत्वा।

टब्बार्थ-केतलाइक तीर्थंकरनी भक्तिजाणी ने केतलाइक जीत-आपणो आचार छे एहवा कहीने, केतलाइक धर्म जाणी ने। यह उक्त सूत्र में जो जृंभग

देवता का वर्णन सूत्र में से विस्तार कहा है। जिनडाडों, जिन मन्दिर, जिन प्रतिमा की १७ प्रकार पूजा सूर्याभदेवता की तरह समझ लेना। मूल पाठ-

यत्-तासिं ण उत्तरपुरत्थिमेण सिद्धाययणा एस चेव जिणघराणवि गमोति, सव्वरयणामयाजिणपडिमा वण्णओ जाव धूवकडुच्छगा।

इसकी टीका और टब्बे में बहुत विस्तार है और उक्त सूत्र में पर्वतों के ऊपर बहुत से शाश्वत सिद्धायतन कहे हैं। आगे चन्दपन्नति सूर्यपन्नति सूत्र में चंद्र सूर्य की राजधानी विमान का वर्णन है। जिसमें जिन मन्दिर, जिन प्रतिमा, जिन अस्थियों का विस्तृत अधिकार है। देखना हो तो सूत्र मौजूद है। प्रिय ! जहाँ देवता प्रतिमा पूजा का अधिकार है, वहाँ सूर्याभ देव की तरह समझ लेना इति ॥१५॥

निरयावलिका पुष्फिया मांहे। चंपानगरी जाणजी।
उववाई में वर्णन कीनो, अरिहंत चैत्य प्रमाण जी। प्रति. ॥ १६ ॥
तीजे वर्गदशोइदेवता, पूजा नाटक विध जाणजी।
चौथे वर्ग दसोइंदेवीयां। प्रतिमा पूजी बहुमानजी। प्रतिमा ॥ १७ ॥
पांचवें वर्गे द्वारकानगरी। वारे श्रावक की जोड़जी।
चंपानी परे नगरी शोभे। श्रावक पूजी होडाहोडजी। प्रतिमा ॥ १८ ॥

अर्थ-निरयावलिका सूत्र के पंच वर्ग हैं। जिसमें चंपा राजगृही शब्द से बनारस द्वारका आदि नगरियों में चंपा की भोलावण है। सो उववाई में **(बहुला अरिहंत चेइया)** पाठ अनुसार नगरियों में मन्दिर का वर्णन पीछे लिख आये हैं और चन्द्रमा सूर्य शुक्र बहुपुत्तिया सिरी हिरी धृति कृती आदि देव देवियों ने सूर्याभ की तरह १७ प्रकार से जिन प्रतिमा की पूजा की है।

और निसढादी १२ ने आनन्द श्रावक की तरह प्रतिमा पूजी है। पाठ **(ण्हाया कयबलीकम्मा)** इसी से यहाँ ज्यादा विस्तार नहीं किया है।

दसमे अध्ययने गौतम स्वामी, तीर्थ अष्टापद जायजी।
उत्तराध्ययन अट्ठारमे देखो, कह्यो उदाइरायजी ॥ प्र.१९ ॥

अर्थ-उत्तराध्ययन सूत्र दशमा अ.

दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ रायगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम मा पमायए ॥ १ ॥

इस गाथा में १४ पूर्व के धणी सदा अप्रमत्त संयमधारी गौतम स्वामी को श्री वीर प्रभुने उपदेश किया है। **(समयं गोयम ! मा पमायए)** इस उपदेश का आशय अति गंभीर है।

परन्तु आधुनिक समय में उस गंभीर आशय को बिना समझे अनेक विकल्प उठते हैं। सच्चे श्रावकों को चाहिये कि पूर्व आचार्यों के उस गंभीर आशय के अनुसार किये हुए अर्थ पर ही दृढ विश्वास रखें। प्रिय ! पूर्वाचार्य के नौवें-दसवें अध्ययन के सम्बन्ध में उक्त गाथा का अर्थ वृत्तिकार ने विस्तार से किया है। उनको यहाँ सम्पूर्ण लिखेंगे तो ग्रंथ बढ जायेगा। इसी से इस सम्बन्ध पर मुद्दे की बात लिख दी हैं। पृष्ठ चम्पानगरी में साल राजा, महासाल युवराजा, राजा की बेन यशोमती, बेनोई पिट्ठर, भानजा गांगेल है। श्री वीर प्रभु की देशना सुन साल महासाल गागलि भांनजे को राज देके दीक्षा ग्रहण की थी। ११ अंग पढ कर राजगृही नगरी आये। भगवान से अरज की गौतम स्वामी कैसे थे, फिर चम्पा पधारे। भगिनी १ बेहनोई २ भानजा ३ इन तीनों को दीक्षा दी ! फिर राजगृही आते समय साल महासाल पिट्ठर यशोदा गांगेलि इन ५ को आत्म भावना भाते केलव ज्ञान उत्पन्न हुआ। भगवान के पास आकर पाँचों प्रदक्षिणा देके केवली पर्षदा में बैठे। गौतम स्वामी ने रोका, तो भगवान ने फरमाया गौतम ! केलवी की आशातना हुई। तब गौमत स्वामी केवली से क्षमा याचना कर मन में चिंतन करने लगे मुझसे बोधित को केवल ज्ञान हो जाता है, परन्तु मुझे क्यों नहीं होता ? उस समय देव ध्वनि हुई कि आज भगवान वीर प्रभु ने व्याख्यान में फरमाया हैं-

(यत्-अद्य भगवता व्याख्यावसरे एवमादिष्टं यो मुनि-चरःस्वलब्ध्या अष्टापदाद्रौ चैत्यानि वन्दते स तेनैव भवे सिध्यतीति श्रुत्वा गौतमः स्वामिनं पृच्छति-भगवन् ! अहमष्टापदे चैत्यानि वन्दितुं यामीति। भगवता उक्तं व्रजाष्टापदे चैत्यानि वन्दस्व। ततो हृष्टो गौतमो भगवच्चरणौ वन्दित्वा तत्रागतः। पूर्वं हि तत्राष्टापदे तादृग् जनसंवादं श्रुत्वा पञ्च पंचशतपरिवारा, कोडिन्न १ दिन्न २ सेवाला ३ ख्यास्तापसा आगताः सन्ति। तेषु कोडिन्नस्तापसः सपरिवार एकान्तरोः पवासेन भुक्तिकरणे मूलकन्दान्याहारयति, सोष्टापदे प्रथममेखलामारूढोस्ति। द्वितीयो दिन्नतापसः सपरिवारः प्रत्यह षष्ठषष्ठपारणके परिशटितानि पर्णानि भुंक्ते, सः द्वितीयां मेखलामारूढोस्ति। तृतीयः सेवालतापसः सपरिवारो निरन्तरमष्टमपारणके

सेवालं भुंक्ते स तृतीयां मेखलामारूढोस्ति एवं तेषु गौतमः सूर्यकिरणावलम्बेन तत्रारोढुमारब्धः ते तापसाश्चिन्तयन्ति, एकःस्थूलवपुःकथामत्राधिरोढुंशक्यते वयं तपस्विनोपि अशक्ता एवं चिन्तयत्स्वेवैतेषु पश्यत्सु स गौतमः क्षणादष्टापदपर्वतशिखरमधिरूढः। ते पुनरेवं चिन्तयन्ति यदासाववतरिष्यति तदास्या शिष्या वयं भविष्यामः। गौतमस्वामी प्रासादमध्ये प्राप्तो निज निजवर्ण परिमाणोपताश्चतुर्विंशति जिनेन्द्राणां भरतकारिताः प्रतिमा ववन्दे। तासां चेवं स्तुतिं चकार। जगचिन्तामणि ! जगनाह ! जगरक्खण' इत्यादि स्तुतिं कृत्वा...)

भावार्थ-भूचर अपनी लब्धि से अष्टापद पर भरत द्वारा निर्मित चैत्यों (प्रतिमा) को वंदन करे तो उसी भव में मोक्ष में जाते है, ये बात सुनकर गौतम स्वामी ने भगवान से प्रार्थना की कि "अष्टापद चैत्य (प्रतिमा) वंदु ?" तब भगवान ने आज्ञा दी पाठ- **(समयं गोयम मा पमायए)** गौतम समयमात्र भी प्रमाद मत करो। भगवान की आज्ञा से गौतम स्वामी अष्टापद तीर्थ ऊपर पधारे व भरत चक्रवर्ती द्वारा भराए हुए २४ तीर्थंकरों के वर्ण शरीर प्रमाण की जिन प्रतिमा को वंदन किया। जगचिंतामणि आदि चैत्यवंदन किया। पीछे पधारे तो १५०३ तापसों को प्रतिबोध दिया इत्यादि बहुत विस्तार हैं। इसका अर्थ तो स्थानकवासी भी प्रतिमा ही करते हैं।

(प्रश्न) भरतचक्री को असंख्याकाल हुवा और भगवती श. ८ उ. ९ में कृत्रिम वस्तु की संख्याता काल की स्थिति कही है। तो भरत ने ही भराया (बिंब) यह कैसे सिद्ध होगा ?

(उत्तर) प्रिय ! भगवती में स्थिति कही वह स्वाभाविक वस्तु की है और वहाँ रही (प्रतिमा) देव सहायता से रही है। जैसे जम्बूद्वीप पन्नत्ति सूत्र मूलापठ में पहिले आरे के वर्णन में वापी पोषरणी आदि कही है। तो विचारो ! शाश्वती तो सूत्र में कही नहीं। ९ कोड़ा कोड़ सागर तक कर्म भुमिज मनुष्य थे नहीं तो बतलावो ! वो वापी आदि किसने कराइ ? जैसे वापी आदि देवताओं की सहायता से रही। वैसे ही भरत द्वारा भराये गये बिंब (प्रतिमा) रहे। यह बात निःशंक है।

आचारांग सूत्र में तीर्थ यात्रा कही है और जंघाचारण विद्याचारण मुनि ने तीर्थ यात्रा की है। अब भी गौतमस्वामी के परंपरा वाले मुनि तीर्थयात्रा कर रहे हैं। आगे इसी सूत्र के अ. १८ में उदाई राजा का अधिकार ध्यान से सुनो ॥१९॥

प्रभावती राणी नाटक कियो, जिन भक्ति में रागजी ।
गुणतीस अध्ययने चैत्यवंदन को फल भाष्यो वीतरागजी । प्र.२० ।

अर्थ-उत्तर. अ. १८।

सोवीररायवसभो, चेच्चा रज्जं मुणि चरे ।
उदायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं ॥ ४८ ॥

प्रिय ! उदाइ राजा का विस्तार में वर्णन सूत्र में है। तथापि मैं प्रभावती राणी ने जिन प्रतिमा आगे भक्ति में लीन होके नाटक किया है वो लिखता। ज्यादा देखना हो तो सूत्र मेरे पास मौजूद है। देख लो-

यत्-तत्रोदायनराज पट्टराज्ञी चेटकराजा पुत्री प्रभावती नामनी श्रमणोपासिका तत्रायाता, सा तस्या मंजूषायाः पूजां कृत्वा एवं भणति 'गयराग दोसमोहो, सव्वन्नू अडपडिहेरसंजुत्तो देवाधिदवे गुरुओ अइरा मे दंसणं देउ १ एवं उक्त्वा तया मंजूषाया हस्तेन परशुप्रहारो दत्तः उद्घाटिता सा मंजूषा, तस्यां दृष्टा चातीव सुन्दराम्लानपुष्पमालालकृता श्रीवर्द्धमानस्वामि प्रतिमा, जाता जिनशासनोन्नति अतीवानंदिता प्रभावती एवं बभाण सव्वन्नु सच्चदंसणो अपुणभवो भवियजणमणाणंद जय चिन्तामणि जय गुरु जय २ जिणवीर अकलमि १ तत्र प्रभावत्या अन्तःपुरमध्ये चैत्यगृहं कारितं-तत्रेयं प्रतिमा स्थापिता ता च त्रिकालं सा पवित्रा पूजयति । अन्यद प्रभावती राज्ञो तत्प्रतिमायाः पुरो नृत्यति, राजा च वीणां वादयति ।

भावार्थ-विद्युन्माली देवता ने चूलहेमवन्त पर्वत से गौशीर्ष चन्दन लाके श्रीवीर प्रभु की प्रतिमा बनाई-एक मंजूसे में रखके वीतभयपाटण भेजी। बहुत अन्यमति लोक अपना देवकुं उद्देशी मंजूषा को खोले पिण खुले नहीं। तदा उदाइ राजा की राणी चेडाराजा की पुत्री महासती प्रभावती राणी ने देवाधिदेव को उद्देशी के मंजूसे को खोली। श्रीवीर प्रभु की प्रतिमा ले अपने अन्तेपुर (घर) के मंदिर में स्थापना करी। त्रिकाल अष्ट प्रकार की पूजा करती थी। एक समय प्रभावती रानी जिन भक्ति में अति उत्साहित होके जिन प्रतिमा के आगे नाटक करती हुई। राजा उदाइ वीणा बजा रहे थे इत्यादि।

इस विषय में प्रिय ! भद्रबाहु स्वामी १४ पूर्वधारी ने आवश्यक सूत्र निर्युक्ति में कहा है-

यत् (अंतेउरचेइयहरं कारियं प्रभावती ण्हाता तिसंज्झं अच्चेइ अन्नया देवी णच्चई राया वीणं वायेइ)

भावार्थ-प्रभावती रानी ने अपने महल के अन्दर जिन मंदिर बनवाया प्रभावती रानी स्नान करके त्रिकाल जिन प्रतिमा का पूजन करती है। एक समय रानी नृत्य पूजा कर रही है और राजा वीणा को बजा रहा है।

उस प्रतिमा की प्रतिष्ठा कपिल केवलीने कीनी है।

प्रिय ! प्रभावती राणी का अधिकार इसी मुजब स्थानकवासीयों की प्राचीन शास्त्र की प्रतों में है। उनमें से करीब २०-२५ प्रत मेरे पास मौजूद है। यदि कुछ शंका हो तो देख लो।

और इसी अध्ययन गाथा ३५ में सगर चक्रवर्ती के ६०००० पुत्रों ने अष्टापद तीर्थ की रक्षा के लिये खाई खोदी इत्यादि सम्बन्ध है। उसका भी (स्थान) व्याख्यान में वाचते हैं। फिर न जाने ये लोग प्रतिमा क्यों नहीं मानते हैं ?

आगे अ. २९ मे बोल ७३ में से १५ वां चैत्यवंदना का फल-

यत्-टीकार्थ-प्रत्याख्यानानंतर चैत्यवन्दना कार्या। अथ एतत्फल प्रश्न पूर्वमाह (थयथुइ मंगलेणं भंते ! जीवे किं जणयेइ ? थयथुइ मंगलेण नाणदंसण चरित्त-तत्तबोहिलाभं जणयइ, नाणदंसण चरित्तबोहि लाभ संपन्ने य जीवे अन्तकिरियं कप्पविमाणोववत्तियं आराहण आराहेइ १५)

भावार्थ-चैत्य वन्दन का फल नाण दर्शन चरित्र बोधबीज का लाभ होता है। बोध बीज के लाभ से जीव अन्तक्रिया **(मोक्ष कल्पविमानोत्पत्तिकां आराधनां आराधयति।)**

प्रिय ! यहाँ चैत्य वन्दन से यावत् मोक्ष कहा है। अब तो आप सन्तोष कर इस वीर वचनों को आराधो ॥२०॥

दशवैकालिक सिज्जं भवभट्ट, प्रतिमाथी प्रतिबोधजी।
जाणं गभवियशरीर निक्षेपा, अणुयोगद्वार ल्यो जोयजी ॥ प्रतिमा. ॥ २१ ॥

अर्थ-श्री दशवैकालिक सूत्र के कर्ता श्री शय्यंभवसूरि को शान्तिनाथजी की प्रतिमा देख के प्रतिबोध हुआ-

यत्-सिज्जं भवं गणहरं जिणपडिमादसणण पडिबुद्धं।

और इसी सूत्र के अध्ययन. ८ गा. ५५॥

यत्- चित्तभित्तिं ण णिज्झाए। नारिं वा सुअलंकियं।
भक्खरं पिव दट्ठुणं। दिट्ठि पडिसमाहरे ॥ ५५ ॥

मतलब जिस मकान में स्त्रियों के चित्र बने हो, साधु उस मकान में नहीं रहे।

विद्वानों को विचार करना चाहिये। जब स्त्री की मूर्ति (चित्र) से विषय विकार उत्पन होते है, तो श्री वीतराग की निर्विकार शांतमुद्रा के दर्शन से वैराग्य उत्पन्न क्यों नहीं होगा ? अवश्य होगा। आगे अनुयोगद्वार में **(जाणग शरीर.)**

यत्-जहा को दिट्ठं तो अयं घयकु म्भे आसी अयं महुकु म्भे आसा से तं जाणयसरीर।

जैसे जंबुद्वीप पन्नत्ति में श्री रिषभदेव भगवान मोक्ष पधारे उनके शरीर का इन्द्रादिक ने वन्दन पूजन किया।

भविय सरीर पाठ-

यत्-जहा को दिट्ठंतो अयं महुकु म्भे भविस्सइ अयं घयकु म्भे भविस्सइ से तं भविय सरीर।

जैसे तीर्थंकरों के जन्म के समय में इन्द्रादिक ने वन्द पूजन किया। (आगे निक्षेपे सुनो-)

जत्थयजं जाणेज्जा निक्खेवं निक्खेवे निरवसेसं।
जत्थ विय न जाणेज्जा। चउक्कयं निक्खिवे तत्थ ॥ १ ॥

अर्थ-जहां जिस वस्तु में जितने निक्षेप जाने, वहां उस वस्तु में उतने निक्षेप करें और जिस वस्तु में अधिक निक्षेप नहीं जान सके तो उस वस्तु में चार निक्षेप तो अवश्य करें।

॥ श्री अर्हंतों के ४ निक्षेपा ॥

(१) अर्हंतों का नाम लेना यह नाम निक्षेपा।

(२) अर्हंतों की प्रतिमा स्थापना करना यह स्थापना निक्षेपा।

(३) अर्हंतों का अतीत अनागत काल यह द्रव्य निक्षेपा।

(४) अर्हंतों के ३४ अतिशय आदि समोसरणवत् यह भाव निक्षेपा। इस तरह सब वस्तु में समझना। इसमें हमारे स्थानकवासी भाई नाम निक्षेप को वन्दनीक मानते हैं और स्थापना निक्षेप को अवन्दनीय मानते हैं।

परन्तु दीर्घदृष्टि से विचार तो करें। स्थापना में नाम मिला हुआ है। नाम

से स्थापना में गुण की वृद्धि ज्यादा है। जैसे-

(१) नाम : आचारांग की माला फेरो। (२) स्थापना : आचारांग पुस्तक वांचो ज्ञान ज्यादा किसमें हैं ?	(१) नाम : जम्बूद्वीप की माला फेरो। (२) स्थापना : जम्बूद्वीप का पट देखो। ज्ञान ज्यादा किसमें है ?
(१) नाम : विलायत की माला फेरो। (२) स्थापना : विलायत का (नकशा, फोटू) देखने पर अमेरिका आफ्रिका जर्मनी जापान लंडन आदि का ज्ञान होता है।	(१) नाम : हिन्दुस्तान की माला फेरो। (२) स्थापना : हिन्दुस्तान का (नकशा) फोटू देखो (पूर्व पंजाब राजपूताना दक्षिण आदि पर्वत नदी रेलवे आदि का ज्ञान हो जाता है।)
(१) नाम : अरिहंतों की माला फेरी। (२) स्थापना : अरिहंतो की मूर्ति देखो, मूर्ति में नाम शामिल हैं। इसी से नाम से स्थापना में गुण ज्यादा है।	(१) नाम : जैनियों के देव (२) स्थापना : जैनीयों के देव की मूर्ति। ज्यादा ज्ञान किसमें हैं ? स्वयं विचार करें।

प्यारे ! अब सोचो ज्ञान ज्यादा किसमें है ? राम की तरह, केवल राम से ही सिद्धि नहीं है। जरा मतलब भी समझो। जिससे कल्याण हो।

पूजा विषय गाथा १२वीं के अर्थ में लिख आये हैं। इति।

थूभ कह्याश्रीनन्दी सूत्रे। मुनिसुव्रत विशाला मांय जी।
व्यवहारसूत्रे आलोयण लेवे। मुनि प्रतिमा पासे जायजी ॥ प्र.२२ ॥

अर्थ-नन्दी सूत्र मूल विशालानगरी में श्री मुनिसुव्रत भगवान के थूभ के प्रभाव से नगरी का बचाव हुआ। यह बात स्थानकवासियों में प्रसिद्ध है। व्यवहार सूत्र उद्देसा में आलोचना अधिकार में जो साधु को प्रायश्चित लगे तो आचार्य, उपाध्याय, बहुश्रुत, घणा आगम का जाण पासे आलोचना लेना, १ कदाचित्, आ. उ. नहीं हो तो संवेगी साधु के पास आलोचना लेना २ कदाचित् संवेगी नहीं हो तो अन्य संवेगी पास आलोचना लेना, कदाचित् अन्य संवेगी न हो तो रुपसाधु के पास आलोचना लेना ४ रुपसाधु नहीं हो तो पच्छाकडा श्रावक के

पास आलोचना लेना ५ पच्छाकड़ा श्रावक नहीं हो तो-

यत् जत्थेव सम्मं भावियाइं चेइयाइं पासेज्जा कप्पेइ से तस्सं तिए **आलोइत्तए वा।**

अर्थ-सम्यक् भाषित एटले सुविहित प्रतिष्ठित जिन प्रतिमा। **(चैत्यं जिनौकस्तद्बिंबमिति वचनात्)** ऐसी प्रतिमा देखे कल्पे तेहनी पासे आलोचवुं ! यह सूत्रार्थ में खुलासा-"जिन प्रतिमा पासे आलोयणा लेवे।"

(प्रश्न) क्या प्रतिमाजी प्रायश्चित दे सकती है ?

(उत्तर) प्रिय ! इस आलावे में आगे गाम नगर के बारे में "सिद्धों की साक्षी से आलोचना ले" कहा है, तो सिद्ध क्या आलोचना सुन प्रायश्चित देते हैं ?

प्रिय ! यह तो दोनों कारण हैं। कार्य तो अपने आप का पश्चाताप करना है, तो अंतःकरण से पाप को प्रगट करना इसी लिए देव गुरु के समक्ष आलोचना लेते हैं इति।

निशीथ कल्पदशा श्रुतस्कंधे। नगरियां को अधिकार जी।
चंपानी परे मंदिर शोभे। वीतराग वचन लो धारजी॥ प्र.२३ ॥

अर्थ-निशीथ तथा बृहत् कल्प दशाश्रुतखन्ध में चम्पा आदि नगरियां हैं। जिसमें उववाई सूत्र की तरह **(बहुला अरिहंतचेइया)** जिन मन्दिर शोभायमान है। कहा है फिर दशाश्रुतखन्ध अ. ८ में श्री वीर प्रभु के पिता सिद्धार्थ राजा ने जिन प्रतिमा पूजी है एवं त्रिशलादि राणी। सो पाठ-

यत् (सयसाहस्सिए य जाए य दाए य इत्यादि)

व्याख्या-(सयसाहस्सिए य) लक्षप्रमाणान् (जाए य) यागान् अर्हत्प्रतिमापूजाः भगवन्मातापित्रोः श्री पार्श्वनाथसन्तानीय श्रावकत्वात्यजधातोश्च देवपूजार्थत्वात् यागशब्देन प्रतिमापूजाः एव ग्राह्याः अन्यस्य यज्ञस्य असंभवात्। श्री पार्श्वनाथसन्तानीय विकत्वं चानयोराचारांगे प्रतिपादितं (दाए य) दायान् पर्वदिवसादौ दानानि।

यह मूल सूत्र में मन्दिर प्रतिमा पूजा का अधिकार है। इति॥ २३ ॥

आवश्यक महिमा शब्द विचारो। भरत श्रेणिक भराव्या बिंबजी।
वग्गुर श्रावक पुरिमताल को। केइ चैत्य कराव्या थूभजी॥ प्र. २४ ॥

अर्थ-उक्त सूत्र लोगस्स में **(कित्तिय वंदिय महिया)** जिसमें कीर्ति वंदना

ये दो शब्दभाव पूजावाची हैं और (महिया) शब्द द्रव्य पूजावाची है। टीका में भी ऐसा ही अर्थ किया है। आगे भरतचक्रिका अधिकार सुनो-

यत्- थूभसयभाउआणं। चउवीस चैव जिणघरे कासी।
सव्वजिणाणं पडिमा वण्णेणं। पमाणेहि नियएहिं॥ २३६॥

अर्थ-भरतचक्रवर्तिने अपने सौ भाईयों के सौ स्तूप बनवाए और चौवीस तीर्थंकरों के मन्दिर तथा उनके अन्दर वर्ण तथा प्रमाण युक्त उनकी प्रतिमायें (अष्टापद पर) बनवाई और सुनो-

यत्- अकसिणपवत्तगाणं विरया विरयाणं एस खलु जुत्तो।
संसारपयणुकरणो दव्वत्थए कूवदिट्ठन्तो॥ ६॥

मतबल द्रव्य पूजा से संसार पतला करे याने क्षय करे, श्रावक। कूप दृष्टांत। श्री योगशास्त्र आदि में श्रेणिक राजा ने मन्दिर बनाये। और १०८ सोने के जव से हंमेशा जिन प्रतिमा आगे साथीया करते और पूजा का अधिकार पीछे लिख आये हैं। आगे वग्गुर श्रावक का अधिकार सुनो-

यत्- तत्तो य पुरिमेताले, वग्गुरइसाण अच्चए पडिमं।
मल्लिजिणा यणपडिमा, अन्ताएवंसि बहुगोट्ठी॥

इसका मतलब यह है कि पुरिमताल नगर में वग्गूर श्रावक ने मल्लिनाथ भगवान का मन्दिर बनवा के सपरिवार जिन प्रतिमा का पूजन किया।

इनके सिवाय भी जैन सिद्धान्तों में मूर्ति का अधिकार बहुत है। मगर इन लोगों ने ३२ सूत्र माना है जिस कारण ३२ सूत्र का ही प्रमाण दिया है। ज्यादा देखना हो तो महानिशीथ आदि सूत्र में देखें।

(प्रश्न) अजी ! महानिशीथ तथा संदेहदोलावली, संघ पट्टक में तो मन्दिर मूर्ति का निषेध किया सुनते हैं।

(उत्तर) प्रिय ! किसी गुरुगम से उक्त शास्त्र पढो। उनमें तो मन्दिर मूर्ति की स्थापना है। उक्त ग्रन्थकर्ता जैन आचार्य महाप्रभाविक श्री जिनवल्लभसूरि तथा जिन दत्त सूरिजी हुए हैं। उक्त ग्रन्थ में अविधिचैत्य और साधु माल आरोप करने तथा चैत्य से साधु का आजीविका करने का निषेध हैं। उन्हीं महात्माओं के हस्तकमल से प्रतिष्ठा कराये अनेक शिखरबन्ध मन्दिर हैं। वो

मारवाड, मेवाड, गुजरातादि में मौजूद है। और महानिशीथ का नाम तुम लेते हों तो फरमाओ। महानिशीथ सूत्र किस ने फरमाया है ?

(पूर्वपक्ष) महानिशीथ अ. ५ में गौतम स्वामी को श्री वीर प्रभु ने फरमाया है।

(उत्तर) प्रिय ! यह बात आपको मंजूर है कि महानिशीथ वीर प्रभु ने फरमाया है। तो लो सुनो-

(१) अध्ययन २ में कहा है अष्ट प्रकार से पूजा करनी है।

(२) अध्ययन ३ में कहा है मन्दिर बनाने वाले १२वें देवलोक में जाते हैं।

(३) अध्ययन ४ में कहा है संसार पतला करते हैं इत्यादि। ज्यादा देखना हो तो महानिशीथ सूत्र मूल पाठ में देख लेना चाहिए।

विचारो ! क्या तीर्थंकरों के वचन ऐसे परस्पर विरुद्ध होते है कि अ. २-३-४ में तो मूर्ति मन्दिर कह दिए और पांचवें अध्ययन में निषेध कर दिया (वाह !) आपने तो जैन सिद्धान्त को कुरान पुरान बना दिया।

शायद आप कह दोगे कि हम ऊपर लिखे अध्ययन नहीं मानते। तो आप की अज्ञानता विद्वानों से छिपी नहीं रहेगी, कि २-३-४ अध्ययन तो नही मानना और ५वां अध्ययन मानना।

प्रिय ! पांचवे अध्ययन में ही स्पष्ट मन्दिर मूर्ति सिद्ध है। परन्तु आपके जैसे आदमी को **(पीलिया)** हो तो सफेद वस्तु पीली दिखे इस में आदमी का दोष नहीं है। पीलिया का ही दोष है। ऐसे ही आप को असत्य अज्ञान का पीलिया हो रहा है। जिससे ५ वें अध्ययन में मन्दिर मूर्ति सिद्ध है तो भी आप को निषेध मालूम होता है। दोष तो असली अज्ञान का है। उसको आप दूर कर दो तो अभी मालुम हो जायेगा।

सुनो महानिशीथ अ. ५ का मतलब-

उस समय चैत्यवासी, देवद्रव्यभक्षी लिंगधारी भ्रष्टाचारी मिथ्यादृष्टि चैत्य ममता चैत्य से आजीविका करनेवाला साधु श्री कमल प्रभाचार्य से कहता हुआ "भगवन् आप एक चौमासा करें, आपके उपदेश से हमारे बहुत मन्दिर हो जायेंगे" यहां चैत्यवासी ने अपनी ममता आजीविका निमित्त विनंती की है। उस पर भी आचार्य महाराज ने फरमाया **(जइवि जिणालए)** यद्यपि जिन मन्दिर है। इसका मतलब जिन मन्दिर यानि विधि चैत्य की स्थापना करनी है। परन्तु उस भ्रष्टाचारी की ममताभाव के कहने पर आचार्य महाराज ने कहा है **(तहावि**

सावज्जमिणं नाहं वयामि) जिनमंदिर हो तो भी तुम्हारा जिनआज्ञा विरुद्ध कार्य सावद्य है। जैसे कोई आजीविका-इस लोक परलोक की वांछा से सामायिक पोसह आदि करे तो उसको अविधि जानकर साधु निषेध करते हैं। परन्तु यह नहीं समझना कि सामायिक पोसह का निषेध हो गया।

प्रिय ! अविधि का निषेध करने से विधि की स्थापना अपने आप ही हो गई। उसी से उक्त ३ शास्त्र में विधि चैत्य का मंडन और अविधि चैत्य का खंडन सिद्ध हुआ। ३२ सूत्र में मूर्ति है।

वादी कहे आ तो पंचांगी, म्हें तो मानां मूल जी।
वज्रभाषा बोले ऐसी, नहीं समकित को मूलजी ॥ प्र.२५ ॥

अर्थ-यह ऊपर ३२ सूत्र से मूर्ति सिद्ध है। उनको देख के कितने ही कह देते हैं कि यह तो पंचांगी है। हम तो मूल सूत्र को मानते हैं।

प्रिय ! यह भाषा कैसी वज्र समान है। वज्र से तो एक ही भव में मरण होगा, परन्तु ऐसी भाषा से तो भवोभव चतुर्गति परिभ्रमण करना पड़ता है। कारण अर्थ श्री अरिहंत फरमाते हैं और सूत्र गणधर रचते हैं। यत् **(अत्थं भासई अरहा सुत्तं गंथंति गणहरा णिउणा)** ए अनुयोगद्वार का वचन है। अब विचारो, यह अर्थ अरिहंतों के फरमाये नहीं मानना और भद्रिक जीवों को फसाने के लिये छलबाजी करके कहना कि हम मूल सूत्र मानते हैं। तो हम ऊपर सूत्रों का पाठ लिख आये हैं, उन्हीं को क्यों नहीं मानते हो ? श्री वीर प्रभु के वचन को नहीं माननेवाले में समकित होता हैं ? अपितु नही होता।

पंचांगी ती कही मानणी, सुणसूत्र की साखजी।
समवायंगे द्वादशांगहुंडी, जिनवर गणधर भाषजी ॥ प्र.२६ ॥

अर्थ-मूल सूत्र में पंचांगी माननी कही है। सुनो ! सूत्र समवायांग में १२ अंग की निर्युक्ति आदि माननी कही है।

यत्-आयारे णं परित्ता वायणा संखिज्जा अणुयोगदारा संखिज्जा वेढा संखिज्जा सिलोगा संखिज्जाओ निज्जुत्तिओ संखिज्जाओ पडिवत्तिओ संघयणीओ इत्यादि।

ए आचारांग सूत्र की निर्युक्ति संख्याती कहीं है। इसी तरह १२ अंग की निर्युक्ति मूल पाठ में है।

शतकपचवीस उद्देसो तीजो। भगवती अंग पिछाणजी॥
सूत्र अर्थ निर्युक्तिमानों। या जिनवरकी आणजी॥ प्र.२७॥

अर्थ-सूत्र भगवती शतक २५ उ. ३ मूल पाठ-

यत्-सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ णिज्जुत्तिमीसिओ भणिओ।
तइओ य निरवसेसो, एस विहि होइ अणुयोगे॥ १॥

अर्थ-पहली सूत्र अर्थ दूजी निर्युक्ति के साथ कहना तीजी निरवशेष। इसीमें टीका,चूर्णि, भाष्य का समावेश होता है।

अनुयोगद्वार सूत्र में देखो, निर्युक्ति की बात जी।
नंदी में निर्युक्ति मानी, छोड़ो हठमिथ्यात्व जी॥ प्र.२८॥

अर्थ-अनुयोगद्वारा सूत्र में निर्युक्ति यत् **(सुत्ताणुगमे निज्जुत्ति अणुगमे य)** मतलब-सूत्र और निर्युक्ति दोनों माननी कहा है। आगे नंदीसूत्र सुनो-

सुत्तत्थो खलु पढमो बीओ, निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ।
तइओ य निरवसेसो, एस विहि होइ अणुओगे॥ १॥

अर्थ-पूर्व में लिख आये हैं प्रिय! इतने मूल सूत्र के प्रमाण को नहीं मान के मिथ्या (झूठ) हठ करना क्या विद्वानों का काम है? आत्म कल्याण चाहते हो तो इस झूठे कदाग्रह को छोड़ दो। वीर प्रभु के वचनों पर आस्था रखो।

वादी कहे वा तो निर्युक्ति, गई काल में वीत जी।
नवी रची आचारिज, ज्यारि किम आवे परतीत जी॥ प्र.२९॥

अर्थ-मूल सूत्र में बोलने को जगह न मिली तब कितने गाडरी प्रवाह लोगों को भ्रम में डालते हैं कि सूत्र में कही वो पंचांगी इस काल में विच्छेद हो गई और अभी जो है वो आचार्यों ने नई रची है। उनकी क्या परतीत? मन्दिर प्रतिमा का अधिकार पीछे से मिला दिया होगा।

सूत्र रह्या निर्युक्ति वीती, या थे किम करी जाणी जी।
आचारिज रचिया नहिं मानों, सुणजो आगे वाणी जी॥ प्रतिमा.३०॥

अर्थ-यह आप का कहना तद्दन मिथ्या है। लो! जो पंचांगी इस काल में विच्छेद हो गई तो फिर ३२ सूत्र किस तरह से रहे? या फिर लुंकाजी के

पढ़ने के वास्ते ही ३२ सूत्र की रक्षा की और किसी सूत्रों की नहीं कीं। जो उधई आदि खा गया कहते हो तो क्या आप जैसे उन जानवरों को ज्ञान था सो ३२ सूत्र तो रख दिये और बाकी सब खा गये। क्या आप लोगों की विद्वत्ता का परचा है ! कहाँ तक तारीफ करें !

प्रिय ! जैसा ३२ सूत्र पूर्वाचार्यों ने पुस्तकारूढ किया है, वैसे ही बाकी सूत्र पंचांगी पुस्तकारूढ की है। जो पंचांगी नई रची कहते हैं तो ३२ सूत्र भी नया रचा हुवा मानना पड़ेगा। निर्युक्ति आदि में नई गाथा मिला दी तो मूल ३२ सूत्र में नई गाथा मिलाने में उनकी कलम पकड़नेवाला कौन था ? देखों, उन आचार्य महाराज का वचन, जिस जगह जो बोल विसर्जन था। उस जगह कह दिया कि **तत्वं केवली गम्यं**। प्रिय ! केवल कदाग्रहवश हो के कहोगे कि हम तो आचार्य की रची पंचांगी नहीं मानें। तो आगे सुनो-

तीन छेद भद्रबाहु रचिया, पन्नवणा श्यामाचार जी।
दशवैकालिक सिज्जंभवकृत, निशीथ विसाख गणधारजी ॥ प्र.३१ ॥
देवड्डिगणी जी नन्दी बनाई। घणा सूत्र का नामजी।
ज्यों वृत्ति का कर्त्ता जाणो। भद्रबाहु स्वामजी ॥ प्र.३२ ॥

अर्थ-श्री भद्रबाहु स्वामीने आचारांगादि ११ सूत्र की निर्युक्ति और ३ छेद सूत्र (**कल्प व्यवहार दशाश्रुतस्कंध**) बनाये है और २३ वें पाट पर

श्यामाचार्य ने पन्नवणा सूत्र बनाया है और श्री शयंभवसूरिने दशवैकालिक बनाई। श्री वैशाखागणीने लघुनिशीथ बनाई। श्री देवर्धिगणी ने नन्दी बनाई। जिसमें ७३ सूत्र १४००० पइन्ना मानना कहा है।

इस जगह १० मिनिट आँख मींच के सोचो कि भद्रबाहु स्वामी का ३ सूत्र मानना और १० नहीं मानना। दूसरा २३वीं पाट के २७वें पाट के आचार्य का बनाया मानना और भद्रबाहु स्वामी की निर्युक्ति नहीं माननी, यह कितने विचार की बात है।

प्रिय ! जब बोल चाल का निर्णय करना है तब तो टीका आदि की शरण लेते हैं। जब मूर्ति मानने का साबित होता है तब आप पंचांगी मानने में हिचकते हैं। परन्तु कृतघ्नता कितना बड़ा पाप है, वो हृदय में रखना, जो टीका न होती तो आप का टब्बा कहां से बनता ? जो टब्बा नहीं होता तो आपकी क्या दशा होती ? खैर आगे सुनो-

प्रकरणमांसुं ढालचोपइयां । प्रतिमा देवो गोपजी ।
तीजो महाव्रत चोडे भांगो । जिनआज्ञा दीवी लोपजी ॥ प्र.३३ ॥

एक अक्षर उत्थापे जिणरो । वधे अनन्त संसारजी ।
सूत्र का सूत्र नहीं माने । ए डूबे डूबावणहार जी ॥ प्र.३४ ॥

अर्थ-सूत्र ग्रंथ प्रकरण से ढाल चोपाइयां बनाते हैं। जिस में जहां मन्दिर प्रतिमा का अधिकार आता है वह कितनेक तो अधिकार निकाल देते हैं। जैसे रामचरित्र, गजसिंहचरित्र, वीर श्रीकुसुमश्री चरित्र, जय विजय चरित्र, मंगल कलश, जंबूचरित्र आदि सैंकडों ढाल चोपाई हैं। कितने ही गोप देते हैं। कितने ही हरताल सफेद लगा देते हैं। कहो इस ग्रन्थकर्ता की चोरी-भगवान की चोरी से क्या तुम्हारा माना हुआ तीजा व्रत रह सकता है ? अपितु कभी नहीं ॥३३-३४॥

प्रिय ! जैन सिद्धांतों में एक अक्षर मात्र भी न्यूनाधिक प्ररुपणा से अनन्त संसार की वृद्धि होती हैं, तो फिर सूत्र का सूत्र ही नहीं माने उनका तो कहना ही क्या। प्रिय ! जैन सिद्धान्त तो **(तिण्णाणं तारयाणं)** हैं। परन्तु आप जो डूबाणं डुबा वीयाणं। बने बैठे हैं। ज्यादा आपको क्या विशेषण !

बत्तीस सूत्रों में प्रतिमा बोल, चतुरां ले लो जोयगी ।
भावदया मुज घटमां व्यापी, उपकारबुद्धि छे मोय जी ॥ प्र.३५ ॥

अर्थ-बत्तीस सूत्रों में प्रतिमा का अधिकार है, वह हमने बतला दिया है। वो चतुर पुरुष जान गये होंगे। प्रिय ! मुझे किसी से द्वेष भाव नहीं है। बल्कि कितने ही भद्रिक जीव उलटे रास्ते जा रहे हैं। उन्हीं पर भाव दया ला के उपकार बुद्धि से ही प्रतिमा छत्तीसी बनाई थी। जिसके मोहकर्म का क्षयोपशम होगा वही इस बात को धारण करेगा। मेरा तो कहना है कि सर्व जीव जिनशासन के रहस्य का पान करो और आत्म कल्याण करो ! करो ! करो ! जल्दी करो ! ॥३५॥

प्रतिमा छत्तीसी सुणी भवि प्राणी, हृदये करो विचार ।
पंथ छोड़ी समकित आराधो, पामो भवनो पार जी ॥ प्र.३६ ॥

अर्थ-प्रतिमा छत्तीसी सुन के हृदय में विचार करो। परन्तु जब तक पक्षपात है तब तक सीधा मार्ग मिलना दूर है। इसी लिए पक्षपात छोड़ के जिनवचनों पर आस्था रखें, जिससे संसार से जल्दी पार पा सकें ॥३६॥ इति।

कलशः-रायसिद्धारथ वंशभूषण, त्रिशला देवी माय जी।
शासन नायक तीर्थ ओसीया, रत्न विजय प्रणमे पाय जी।

साल बहत्तर जेठ मासे, सुद पञ्चमी गुरुवार जी।
गयवर सरणो लियो तेरो, सफल भयो अवतारजी॥ ३७॥

अर्थ-सिद्धार्थ राजा के वंश में भूषण समान जिनकी माता त्रिशला देवी है, ऐसे श्री वीर प्रभु, शासन के नायक जिन के बिंब की प्रतिष्ठा श्री पार्श्व प्रभु के ६ ठे पाट पर श्री रत्नप्रभसूरि ने वीरनिर्वाण के ७० वर्ष बाद स्वहस्ते की है। जिनको आज से २३७१ वर्ष हुए हैं। ऐसा जो तीर्थ ओसीया नगरी में है। जिन के चरण कमल में श्री रत्नविजयजी प्रणाम कर रहे हैं। उक्त तीर्थ की यात्रा मैंने हर्ष उत्साह से की है। श्री त्रिलोक पूजनीय वीर प्रभु से अर्जी की है। अहो ! प्रभु आपकी अद्‌भूत शरण तारण तरण जान के मैंने आपका शरणा लिया है, मुझे भी आप सरीखा बना दो। सफल अवतार हुवा जो मैंने आज वीर प्रभु के दर्शन हेतु यात्रा की। प्रतिमा छत्तीसी की रचना संवत् १९७२ जैष्ठ सुदी ५ गुरुवार को करी है। इति। शुभम्॥

दर्शन से दुःख मिटे-पूजन से पाप कटे

मन्दिर में जाकर भगवान के दर्शन करने की इच्छा हो तो एक उपवास का, दर्शन के लिए अपने स्थान से उठे तो दो उपवास का, मन्दिर जाने को तैयार हो तब तीन उपवास का, मन्दिर की तरफ जाने लगे-एक कदम रखे तब चार उपवास, मन्दिर की तरफ चलते चलते पांच उपवास का पुन्य मिलता है, प्रभू की प्रतिमा को भाव से वंदन करने पर अनन्त पुन्य मिलता है। पूजन करने पर उससे सौ गुना पुन्य मिलता है।

सामायिक पांचवीं कक्षा का धर्म है। भगवान का दर्शन-पूजन चौथी क्लास का/चौथी पास किए बिना पांचवीं में बैठनेवाला फैल हो जाता है। इसलिए सामायिक करनेवालों को भी मन्दिर में प्रभुजी के दर्शन-पूजन करने ही चाहिए।

यात्रा करें ! वन्दन करें ! स्तुति करें !

पहले सौधर्म देवलोक में	बत्तीस लाख जैन मन्दिर हैं।
दूसरे ईशान देवलोक में	अट्ठाइस लाख जैन मन्दिर हैं।
तीसरे सनत्कुमार देवलोक में	बारह लाख जैन मन्दिर हैं।

चौथे महेन्द्र देवलोक में	आठ लाख जैन मन्दिर हैं।
पांचवें ब्रह्म देवलोक में	चार लाख जैन मन्दिर हैं।
छट्ठे लांतक देवलोक में	पचार हजार जैन मन्दिर हैं।
सातवें महाशुक्र देवलोक में	चालीस हजार जैन मन्दिर हैं।
आठवें सहस्त्रार देवलोक में	छः हजार जैन मन्दिर हैं।
नववें आनत देवलोक में दशवें प्राणत देवलोक में	चार सौ जैन मन्दिर हैं।
इग्यारवें आरपा देवलोक में बारहवें अच्युत देवलोक में	तीन सौ जैन मन्दिर हैं।
नौ ग्रैवेक देवलोक में	तीन सौ अठारह जैन मन्दिर हैं।
पांच अनुत्तर देवलोक में	अति भव्य पांच जैन मन्दिर हैं।

कुल मिलाकर वैमानिक देवलोक में चौराशी लाख सत्ताणवे हजार तेइस जैन मन्दिर हैं। जिन्दा रहने के लिए जितनी हवा (सांस) की आवश्यकता है। उतनी ही जैन धर्म में मन्दिर व मूर्तिपूजा की आवश्यकता है। जैन मन्दिर जिन्दाबाद ! मूर्तिपूजा सदा आबाद !!

कल्पित कृति से सावधान

अभी-अभी हाथ में एक बनावटी कृति आयी है। जिसका नाम '**समुत्थान सूत्र**' है। त्रिलोकचंद जैन (भूतकालीन चारित्र तिलोकमुनि) जिसके संपादक है। '**जैसी दे वैसी मिले कुँए की गुंजार**' पुस्तिका का अधिकांश मेटर अंत में परिशिष्ट ४ और ५ में लिया है। जिससे 'गुंजार' पुस्तिका के गुमनामी तीर फेंकने वाले छुपे रुस्तम भी ये होने चाहिए, ऐसा, अनुमान होता है। अस्तु...।

पुस्तक के '**सम्पादकीय**' के निरीक्षण से '**चोर की दाढ़ी में तिनका**' जैसा अनुभव हुआ है। संपादक को खुद को इस में कल्पित कृति का अनुभव हो रहा है। तभी तो 'अपने पूर्वग्रह के कारण अति होंशीयार कोई साधु यह कहे कि -इसमें किसी की उपज का असर है, अतः हम इसे आगम रूप में नहीं स्वीकार करते हैं, तो यह व्यक्तिगत आग्रहमात्र है।' ऐसे विचार प्रकट हुए। फिर भी पुस्तक में अपने पक्ष (स्थानकवासी) की सिद्धि के किसी भी आगम में अंशमात्र भी दृष्टिगोचर न होते कल्पित पाठ मिलने से 'संपादक' यह सूत्र भी जिनवाणी संमत विषयवाला है, इसलिये अवश्य सम्माननीय है। इस प्रकार लिखते हैं-

प्रायः ये ही संपादक '- गुंजार' पुस्तक में भद्रबाहुस्वामी रचित अनेक प्रमाणों से सिद्ध कल्पसूत्र को प्रामाणित न मानकर कल्पित मानते हैं और सभी १०० साल पूर्व की कल्पित कृति को अपने पक्ष की सिद्धि होती है, इसलिये आगम कोटी में गिनते हैं। जो अपने कल्पित मत की सिद्धि करता है वह जिनवाणी संमत और जो अपने कल्पित मत की असिद्धि करता हो (चाहे वह गणधर रचित सत्य आगम भी क्यों न हो) वह अप्रामाणिक, यह संपादक का नापदंड केवल मिथ्यात्व प्रयुक्त आभिनिवेश भरा स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

'**समुत्थान सूत्र**' की रचना पद्धति को खुद संपादक १२वीं से १४वीं सदी की मान रहे हैं, तो स्वतः सिद्ध होता है यह विशिष्ट पूर्वधरादि ज्ञानीओं से रचित कृति नहीं है, तो आगम कैसे मान रहे हैं ? सम्पूर्ण विश्व में रोडी गाँ में भंडार में ही केवल। जीर्ण प्रत थी, इसकी दूसरी प्रत कहीं पर भी नहीं है, ऐसी कपोलकल्पित बातों पर कोई भी तटस्थ व्यक्ति विश्वास नहीं कर सकता।

वास्तविकता यह लगती है - १०० साल पूर्व गणिवर्य उदयचंद्रजी म. के शिष्य प. श्री रत्नचंद्रजी को यह प्रत हनुमानगढ़ चातुर्मास में प्राप्त हुइ। इसका मतलब उदयचंद्रजी गणि का ११० वर्ष पूर्व सं. १९६२ में नाभा राज्यसभा में

मुनिश्री वल्लभविजयजी से मुहपत्ती विषयक वाद हुआ, उसमें उदयचंदजी की बुरी तरह हार हुई, जिसका फैसला अपनी इसी पुस्तिका में पीछे दिया हुआ है। इसके बाद स्थानकवासीओं की अपकीर्ति हुई और उनमें से अनेक साधु संवेगी बनने लगे। इसलिये उन्होंने 'चोर कोटवाल को डंडे' नीति अपनाकर उल्टा प्रचार चालु किया और 'पीतांबर पराजय' नामक छोटी बुक छापी। उसी काल में इस बनावटी कृति की उत्पत्ति हुई हो, यह संभव है। इसका कारण यह है-

१. कृति में पृ. २४-२५-२६ में कपोलकल्पित दौर से मुँहपत्ती मुँह पर बाँधनी यह साधुलिंग है, वगैरह बातें लिखी हैं।
२. पृ. ३० पर 'उपासक दशा' में आता सम्यक्त्व का आलावा 'अरिहंत चेइयाइं' निकल जाए इसलिये, नया मनघडंत आलावा बनाया है।
३. पृ. ६१-६३ पर तिखुत्तो के पाठ से गुरुवंदन करना।
४. पृ. १२९ पर आगमों में अंशमात्र भी नहीं मिलता ज्ञानार्थक चेइय शब्द देकर अपने पक्ष की सिद्धि की कोशिश की है।
५. पृ. १७५ पर जिनकल्पी भी हमेशा मुँहपर मुँहपत्ती बाँधते हैं।
६. पृ. २०१ पर परमात्मा के जन्मनक्षत्र पर भस्मग्रह संक्रम के बाद बहुत सारे मुनि मुंह पर से मुँहपत्ती निकालकर द्रव्य लिंगधारी बनेंगे।
७. पृ. २०२ पर भस्मग्रह के उतरने पर साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका की भी उदय-उदय पूजा होगी।
८. पृ. २०३ पर जो प्रकृतिभद्रक भी जीव जिनप्रतिमा निर्माण कराएगा अथवा उसकी प्रतिष्ठा करवाएगा, वह पापकर्म का बंध करेगा।

भारेकर्मी जीव ऐसे कृत्रिम-बनावटी कृतियों को छापकर संसार को बढ़ाते हैं। इस अराजकता के काल में कौन-किसका मुँह बंद कर सकता है ?

सुज्ञ भवभीरु ऐसी भेलसेल से सावधान रहें !!!

- भूषण शाह

भूषण शाह द्वारा लिखित-संपादित हिन्दी पुस्तक

		मूल्य
1.	जैनागम सिद्ध मूर्तिपूजा	100/-
2.	● जैनत्व जागरण	200/-
3.	● जागे रे जैन संघ	30/-
4.	पाकिस्तान में जैन मंदिर	100/-
5.	पल्लीवाल जैन इतिहास	100/-
6.	दिगंबर संप्रदाय : एक अध्ययन	100/-
7.	श्री महाकालिका कल्प एवं प्राचीन तीर्थ पावागढ	100/-
8.	अकबर प्रतिबोधक कौन ?	50/-
9.	● इतिहास गवाह है ।	30/-
10.	तपागच्छ इतिहास	100/-
11.	● सांच को आंच नहीं	100/-
12.	आगम प्रश्नोत्तरी	20/-
13.	जगजयवंत जीरावाला	100/-
14.	द्रव्यपूजा एवं भावपूजा का समन्वय	50/-
15.	प्रभुवीर की श्रमण परंपरा	20/-
16.	इतिहास के आइने में आ. अभयदेवसूरिजी का गच्छ	100/-
17.	जिनमंदिर एवं जिनबिंब की सार्थकता	100/-
18.	जहाँ नमस्कार वहाँ चमत्कार	50/-
19.	● प्रतिमा पूजन रहस्य	300/-
20.	जैनत्व जागरण भाग-2	200/-
21.	जिनपूजा विधि एवं निजभक्तों की गौरवगाथा	200/-
22.	● अनुपमंडल और हमारा संघ	100/-
23.	अकबर प्रतिबोधक कौन ? भाग-2	100/-
24.	महात्मा ईसा पर जैन धर्म का प्रभाव	50/-
25.	खरतरगच्छ का उद्‌भव	50/-
26.	प्राचीन जैन स्मारको का रहस्य	500/-
27.	जैन नगरी तारातंबोल : एक रहस्य	50/-

भूषण शाह द्वारा लिखित / संपादित गुजराती पुस्तक

1.	મંત્ર સંસાર સારં	200/-
2.	● જંબૂ જિનાલય શુદ્ધિકરણ	30/-
3.	● જાગે રે જૈન સંઘ	20/-

4.	• ઘંટનાદ	
5.	• શ્રુત રત્નાકર (પૂ. ગુરૂદેવ જંબૂવિજયજી મ.સા.નું જીવન ચરિત્ર)	
6.	જિનશાસનના વિચારણીય પ્રશ્નો	50/-

भूषण शाह द्वारा संपादित अंग्रेजी पुस्तक

1.	• Lights	300/-
2.	• History of Jainism	300/-

पू. अशोकजी सहजानंदजी द्वारा लिखित

1.	ग्रहशांति दीपिका	500/-
2.	सुखी और समृद्ध जीवन	400/-
3.	वास्तुदोष : आध्यात्मिक उपचार	500/-
4.	श्री सिद्ध मंत्र संग्रह	500/-
5.	सिद्ध तंत्र संग्रह	500/-
6.	सिद्ध यंत्र संग्रह	500/-
7.	स्वरयोग : एक दिव्य साधना	350/-
8.	योग साधना रहस्य	500/-
9.	ध्यान विज्ञान	400/-
10.	श्री पद्मावती-साधना और सिद्धि	300/-
11.	श्री मणिभद्र साधना (घंटाकर्ण कल्प सहित)	300/-
12.	जैन राजनीति विज्ञान	900/-
13.	महा मृत्युंजय पूजा विधान (जैन पद्धति)	300/-
14.	साधना कल्पद्रुम	400/-
15.	तंत्रलोक की रहस्यमय सत्य कथाएँ	400/-

अन्य साहित्य

1.	नवयुग निर्माता (पुनः प्रकाशन) (पू.आ. वल्लभसूरि म.सा.)	200/-
2.	मूर्तिपूजा (गुजराती-खुबचंदजी पंडित)	50/-
3.	मूर्ति मंडन - आ. लब्धि सू.म.	100/-
4.	हमारे गुरुदेव (पू. जंबूविजयजी म.सा. का जीवन)	30/-
5.	सफलता का रहस्य - सा. नंदीयशाश्रीजी म.सा.	20/-
6.	ધરતી પર સ્વર્ગ સા. નંદીયશાશ્રીજી મ. (ગુજરાતી)	20/-
7.	Heaven on Earth	20/-
8.	कर्म विज्ञान	20/-
9.	जडपूजा या गुणपूजा - एक स्पष्टीकरण (हजारीमलजी)	30/-

10.	पुनर्जन्म - (सं.पू.आ. जितेन्द्रसूरिजी म.सा.)	30/-
11.	क्या धर्म में हिंसा दोषावह है ?	30/-
12.	तत्त्व निश्चय (कुएँ की गुंजार पुस्तक की समीक्षा)	
13.	बत्तीस आगमों से मूर्तिसिद्धि (आशिष तालेडा)	50/-

मिशन जैनत्व जागरण द्वारा प्रसारित साहित्य सूचि - 2019

प. पू. पंजाब देशोद्धारक आ. विजयानंद सू. म. (आत्मारामजी म.) का सन्मार्गदर्शक साहित्य

1.	सम्यक्त्व शल्योद्धार	325/-
2.	नवयुग निर्माता	200/-
3.	जैन तत्त्वादर्श	300/-
4.	जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर	200/-
5.	जैन मत वृक्ष और पद्य साहित्य	200/-
6.	जैन मत का स्वरूप	125/-
7.	नवतत्त्व संग्रह	300/-
8.	ईसाईमत समीक्षा	100/-
9.	चिकागो प्रश्नोत्तर	100/-
10.	अज्ञानतिमिर भास्कर	
11.	तत्त्व निर्णय प्रसाद	

प. पू. प्रशांतमूर्ति मु. मृगेन्द्रविजयजी म. सा. का साहित्य (गुजराती)

1.	શૃંગાર વૈરાગ્ય તરંગિણી	50/-
2.	ભગવાન મહાવીર જીવનદર્શન	50/-
3.	સંખ્યાત્મક કોશ	100/-
4.	હૃદય-પ્રદીપ ષટ્ ત્રિંશિકા (संस्कृत-गुजराती)	100/-
5.	પ્રસંગ પંચામૃત	40/-
6.	Stories From Jainism	100/-

बोसर

1.	दक्षीण भारत में जैन तीर्थ	10/-
2.	महालक्ष्मी आरती मंत्रादी	10/-
3.	पाकिस्तान में जैन मंदिर	10/-
4.	महाकाली आरती - पच्चीसी	10/-
5.	68 तीर्थ भावयात्रा (सचित्र)	15/-

प. पू. मुनिराज ज्ञानसुंदरजी म. सा. द्वारा लिखित साहित्य

1.	मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास	100/-
2.	श्रीमान् लौंकाशाह	100/-
3.	हाँ ! मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है	30/-
4.	सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली	100/-
5.	क्या जैन धर्म में प्रभु दर्शन - पूजन की मान्यता थी ?	50/-

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी द्वारा लिखित / संपादित साहित्य

1.	● समत्वयोग	100/-
2.	अनेकांतवाद	100/-
3.	● अणुपेहा	100/-
4.	● आणंदा	50/-
5.	सदयवत्स कथानकम्	50/-
6.	संप्रतिनृप चरित्रम्	50/-
7.	दानः अमृतमयी परंपरा	310/-
8.	● हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप	100/-
9.	दोहा पाहुड	50/-
10.	बाराखड कवक	50/-
11.	● प्रभुवीर का अंतिम संदेशा	50/-
12.	● दोहाणुपेहा (संपादित)	50/-
13.	● तरंगवती	50/-
14.	નંદાવર્તનું નંદનવન	50/-

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी द्वारा अनुवादित साहित्य

1.	संवेदन की सरगम	50/-
2.	● संवेदन की सुवास	50/-
3.	● संवेदन की झलक	50/-
4.	● संवेदन की मस्ती	50/-
5.	आत्मकथाएँ (संपादित)	50/-
6.	● शासन सम्राट (जीवन परिचय)	50/-
7.	● विद्युत सजीव या निर्जीव	50/-

Audio C.D.

1.	श्री जिनभक्ति शतकम्	150/-	2.	श्री जनभक्ति सुधा	75/-
3.	श्री अजितशान्ति स्तव वंदना	75/-	4.	स्पर्श	20/-

॥ जैन शासन - जैनागम जयकारा ॥

संपादित ग्रंथों की सूचि : (प्रकाशनाधीन)

1. जैन दर्शन का रहस्य
2. प्राचीन जैन तीर्थ - अंटाली
3. श्री सराक जैन इतिहास
4. जैन दर्शन में अष्टांग निमित्त भाग 1,4,5 (साथ में)
5. जैन दर्शन में अष्टांग निमित्त भाग 2,3 (साथ में)
6. जैन स्तोत्र संग्रह
7. अकबर प्रतिबोधक श्री हीरविजयसूरिजी महाराज
8. Reserch on Jainism
9. मिशन जैनत्व जागरण और मेरे विचार
10. जैन ग्रंथ - नयचक्रसार
11. प्राचीन जैन पूजा विधि - एक अध्ययन
12. जैनत्व जागरण की शौर्य कथाएँ
13. जैनागम अंश
14. जैन शासन का मुगल काल और मुगल फरमान
15. जैन योग और ध्यान
16. जैन स्मारको के प्राचीन अंश
17. યુગ યુગમાં મળજો જૈન શાસન (ગુજરાતી)
18. मंत्र संसार सारं (भाग-2) (पुनः प्रकाशन)
19. मंत्र संसार सारं (भाग-3) (पुनः प्रकाशन)
20. मंत्र संसार सारं (भाग-4) (पुनः प्रकाशन)
21. मंत्र संसार सारं (भाग-5) (पुनः प्रकाशन)
22. अज्ञात जैन तीर्थ
23. तत्वार्थ प्रवेश
24. जैन दर्शन - अध्ययन एवं चिंतन
25. जैन मंदिर शुद्धिकरण
26. सूरिमंत्र कल्प संग्रह
27. अजमेर प्रांत के जैन मंदिर
28. जैनत्व जागरण-3
29. विविध तीर्थ कल्पों का अध्ययन
30. जैनदेवी महालक्ष्मी - मंत्रकल्प
31. जैन सम्राट संप्रति - एक अध्ययन

32. જૈન આરાધના વિધિ સંગ્રહ
33. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-1, ગુજરાતી)
34. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-2, ગુજરાતી)
35. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-3, ગુજરાતી)
36. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-4, ગુજરાતી)
37. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-5, ગુજરાતી)
38. सम्मेतशिखर महात्म्य सार
39. मेवाड देश में जैन धर्म
40. જંબૂ શ્રુત એન્સાયક્લોપિડિયા (પૂ. ગુરૂદેવશ્રીને સમર્પિત શ્રુત પુષ્પ)
41. जैन धर्म और स्वराज्य
42. ચંદ્રોદય (પૂ. સા. ચંદ્રોદયાશ્રીજી મ.સા.નું જીવનકવન)
43. जैन श्राविका शान्तला
44. પૂ. બાપજી મહારાજ (સંઘસ્થવિર આ.ભ. સિદ્ધિસૂરિજી મ.સા.નું ચરિત્ર)
45. મારા ગુરૂદેવ (પૂ. જંબૂવિજયજી મ.સા.નું સંક્ષિપ્ત જીવનદર્શન)
46. જૈન દર્શન અને મારા વિચાર
47. श्री भद्रबाहु संहिता - आ. भद्रबाहु स्वामी द्वारा निर्मित ज्ञान प्रकरण)
48. પ્રશસ્તિ સંગ્રહ (પૂ. ગુરૂદેવ જંબૂવિજયજી મ.સા. દ્વારા લખાયેલી પ્રશસ્તિ-પ્રસ્તાવના સંગ્રહ)
49. ગુરૂમૂર્તિ-દેવીદેવતા મૂર્તિ અંગે વિચારણા.

નોંધ : सभी ग्रंथ जल्द ही प्रकाशित होंगे ।

चल रहा विशिष्ट कार्य

जैन इतिहास

- आदीश्वर भगवान से वर्तमान तक

→ यह सूचि इ.सं. 2019 वि.सं. 2075 की है इसके पूर्व की सभी सूचि के अनुसार मूल्य खारीज कीए जाते है । अबसे इसी मूल्य के अनुसार पुस्तकें प्राप्त होगी ।

→ साधु-साध्वीजी भगवंतो एवं ज्ञानभंडारो को पुस्तक भेट दिये जाते है ।

→ सभी प्रकाशन का न्याय क्षेत्र अहमदाबाद है ।

→ कोरीयर से मंगवाने वाले "मिशन जैनत्व जागरण" अहमदाबाद के एड्रेस से ही मंगावे व फोन नं. 9601529534 पर ज्ञात कराये ।

→ ● मार्क वाले पुस्तक उपलब्ध नहीं हैं ।

पुस्तक के लाभार्थी परिवार की अनुमोदना

निर्मलाबेन सेवंतीलाल झवेरी परिवार

पुत्र-दिपक, शैलेश, पुत्रवधू-उज्जवला, मीना, पौत्र-भावेश, करन,
पौत्रवधू-प्रीयंका, मिहीका, प्रपौत्र-क्रीश, प्रपौत्री-यश्वी

8980007872 Ahmedabad